आविष्कार का इतिहास

परिवहन की कहानी

(भाग दूसरा)

इर्गॉन लारसेन

थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड
प्रकाशन विभाग
नयी दिल्ली

1

पहिए, सड़कें, पुल और नहरें

आइए, हम कल्पना करें कि इतिहास में पीछे की ओर ले जाने वाले किसी कालयंत्र के माध्यम से अथवा किसी जादू के प्रभाव से हम यंत्र सभ्यता के आरम्भ से भी पहले के युग में जा पहुंचे हैं। अपने दैनिक जीवन में हम जिन हजारों वस्तुओं के आदी हो चुके हैं, उनसे वंचित हो जाने पर निश्चय ही हम अपने आपको नितान्त-असहाय अनुभव करेंगे। हमें चिन्ता होगी कि हम अपने लिए भोजन, वस्त्र और आश्रय कैसे प्राप्त करेंगे ? अपनी सभी आवश्यकताओं के सिलसिले में हमें बड़ी भारी कठिनाइयों का अनुभव होगा। हम अपने हाथों और किसी चीज का आसरा नहीं ले सकेंगे। हां, हाथों और पैरों के अलावा हमें अपने दिमाग का आसरा जरूर रहेगा। और, हम सोचने लगेंगे कि इस या उस समस्या से कैसे निपटा जाए।

हम अपने लिए कुछ आदिम हथियार तैयार करेंगे और किसी ऐसे शिकार [illegible] खोज में जंगल की ओर निकल चलेंगे जो इतना बड़ा हो कि हमारे कई दिन [illegible] खाने के काम आ सके। किसी बड़े जानवर को मार लेने के बाद उसे ढोने की [illegible]मस्या उत्पन्न होगी। परिवहन के किसी यांत्रिक साधन की जानकारी तो हमें [illegible]स युग में होगी नहीं। उस जानवर को अपने गुफा-निवास तक ढोकर लाने के [illegible]लए हम किसी तरीके को सोचना शुरू करेंगे। हम उसे उठाकर या खींचकर भी [illegible] सकते हैं, लेकिन इससे हम बुरी तरह थक जाएंगे। इसी बीच हममें से किसी [illegible] यह तरीका सूझ सकता है कि अगर जानवर की लाश के नीचे कुछ डालियां [illegible] लकड़ी के लम्बे और चपटे टुकड़े रख दिए जाएं तो उसको खींचना आसान [illegible] सकता है। इस तरह एक स्लेज गाड़ी जैसी चीज बनाई जा सकती है। इस [illegible]रह हम जमीन पर परिवहन का एक साधन ढूढ़ लेंगे, और यह हमारा पहला [illegible]विष्कार सिद्ध होगा।

अगर हम उस युग में रहते होते जिसे मध्य-पाषाण काल कहा जाता है और [illegible] आज से शायद पन्द्रह हजार साल या इससे भी ज्यादा पहले था, तो हम मरे

इसीलिए कि लकड़ी भार से अधिक चिकनी होती है और जमीन पर आसानी से फिसल सकती है।

आरम्भ के कृषक मानवों ने ऐसी फिसलने वाली गाड़ी या स्लेज का काफी उपयोग किया। उन्होंने बाद में इसमें सुधार किया और दो पटरियों को बीच में आड़ी लकड़ियां लगाकर उन्हें चमड़े की पट्टियों से बांधकर एक गाड़ी जैसी बना ली। बर्फीले इलाकों में जाड़ों में ये गाड़ियां परिवहन के एक बेहतर साधन के रूप में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुईं, क्योंकि बर्फ की सतह बहुत चिकनी होती है, और जाड़े में जमी हुई नदी या झील की सतह तो और भी चिकनी होती है।

यह आविष्कार सारे संसार की अनेक जातियों द्वारा अनेक बार किया गया।

पहिए के आविष्कार से पहले : [illegible]

हुई होगी—कभी किसी आदिम मानव ने आग जलाने या आश्रय बनाने के लिए किसी पेड़ की मोटी डालियां गिराई होंगी और अचानक ही कोई भारी चट्टान टूटकर लकड़ियों पर आ गिरी होगी तो जब उसने उस चट्टान को लकड़ियों से परे ठेलने की कोशिश की होगी तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ होगा और साथ ही मजा भी आया होगा कि चट्टान बड़ी आसानी से लकड़ियों पर आगे लुढ़क गई होगी। इस तरह उसने जाना होगा कि भारी चट्टानों को लकड़ी के कुंदों पर आसानी से लुढ़काया जा सकता है।

आज हम उन कुंदों जैसे गुल्लियों को बेलन या रोलर कहते हैं, और इसमें संदेह नहीं कि आदिम मानव ने इस प्रकार के बेलनों का खूब उपयोग किया होगा। सपाट चीज के घर्षण की अपेक्षा बेलन का घर्षण कम होता है, क्योंकि भार, बेलन और जमीन के बीच की रगड़ कम होती है। बेलन या रोलर परिवहन का बहुत दिनों तक उपयोग होता रहा, और वास्तव में आज भी संसार के कुछ भागों में इसका उपयोग होता है। इस कार्य में एक से अधिक लोगों की आवश्यकता होती है। कुछ लोग तो भार को खींचने या धकेलने का काम करते हैं, और कुछ लोग भार के पीछे से रोलर निकालकर उसके आगे रखते जाते हैं। यह एक प्रकार का 'सामाजिक' कार्य होता है। पुराने जमाने में भी इसने आदिम मानवों में मिल-जुलकर काम करने की भावना का विकास किया होगा।
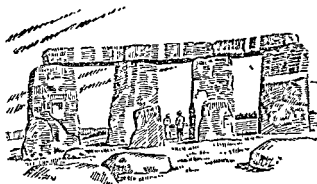
ब्रिटेन का विख्यात प्रागैतिहासिक स्मारक : विल्टशायर स्थित स्टोनहेंज
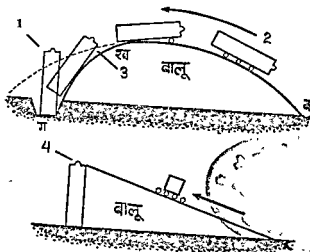
स्टोनहेंज के शिलाखंडों के स्थापन की एक विधि
(1) गड्ढे में सीधा खड़ा पत्थर (2) रोलरों पर पत्थर (3) पत्थर के नीचे से बालू खोदकर हटाई गई अटक (4) पकड़

ऐसे अनेक प्राचीन स्मारक हैं जिनका निर्माण रोलर परिवहन के बिना असंभव था—जैसे, पिरामीड, या ब्रिटेन के स्टोनहेंज। ब्रिटेन के विल्टशायर प्रदेश के सैलिसबरी मैदान में बने स्टोनहेंज नामक स्मारक में बहुत बड़े-बड़े पत्थरों को वृत्ताकार आकृतियों में सजाया गया है। ऐसा लगता है कि इन आकृतियों को धार्मिक और ज्योतिष संबंधी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया गया था। निश्चय ही इनके लिए सारी चट्टानें लगभग 150 मील दूर साउथ वेल्स से लाई गई होंगी, क्योंकि वहीं इस प्रकार का पत्थर पाया जाता है। हो सकता है कि इन्हें कुछ दूर जलमार्ग से लाया गया हो, लेकिन अधिकांश दूरी तो स्थलमार्ग से ही तय की गई होगी और परिवहन के लिए अवश्य ही रोलरों का उपयोग किया गया होगा।

फिर भी रोलर परिवहन भारी वजनों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की कोई बहुत आदर्श प्रणाली नहीं थी। रोलरों को भार के पीछे से निकालकर बार-बार आगे की ओर रखना न केवल बहुत अधिक श्रमसाध्य कार्य था, बल्कि इसमें देरी भी बहुत अधिक लगती होगी। इसके अलावा मानव स्वभाव से

आराम पसन्द होता है, इसलिए इस प्रणाली में सुधार के लिए भी वह बराबर प्रयत्नशील रहा होगा। उसने अब ऐसी गाड़ी बनाई जिसमें भार के लिए बीच में एक तख्ता लगा था और उसके नीचे केवल एक रोलर ही लगाया था और दोनों तरफ चार सीधी खूटियां जड़कर उसे इसके बीच लगा दिया गया था। इस गाड़ी के साथ दिक्कत यह थी कि तख्ते और रोलर के बीच घर्षण बहुत अधिक होता था।

परन्तु ऐसा लगता है कि अपनी रोलर-गाड़ी से ही आगे बढ़कर मानव ने अपना एक सबसे अधिक मौलिक आविष्कार किया होगा। संभवतः यह उसका महानतम आविष्कार था—और यह था पहिया या चक्का।

पहिए का यह आविष्कार कैसे संभव हुआ, कहां, कब और कितनी बार हुआ? इस संबंध में हम कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। हम तो केवल अपने उन पुरखों की जो बिलकुल असभ्य थे, आधे नंगे रहते थे और बिल्कुल अज्ञानी थे, आश्चर्यजनक कल्पना-शक्ति की प्रशंसा ही कर सकते हैं, क्योंकि उनके इस मूलभूत महत्त्व के आविष्कार के बिना हमारी संपूर्ण सभ्यता अस्तित्व में नहीं आ सकती थी और न कायम रह सकती थी। इसके अभाव में न तो हमारे विमान उड़ सकते थे, न घड़ियां चल सकती थीं और न कारखाने चल सकते थे—बिना पहिए हमारी दुनिया घूम ही नहीं सकती थी।

हो सकता है कि कोई रोलर घिसकर चक्के की शक्ल में बदल गया हो और उसे देखकर हमारे कुछ आदिम पुरखों को पहिए का विचार सूझा हो; या, रोलर में कोई लकड़ी घुस गई हो और इस तरह उसने एक धुरे की शक्ल ले ली हो; अथवा, यह हो सकता है कि बार-बार प्रयोग करके हमारे तकनीकी प्रतिभा से सम्पन्न कुछ पूर्वज पहिए की खोज तक पहुंचे हों—जो भी हुआ हो, लेकिन पहिए का आविष्कार हुआ और इसने जो महत्त्व का स्थान ग्रहण किया उससे इसे फिर कभी हटाया नहीं जा सका। काफी लम्बे समय तक तो इसकी बड़ी भोंडी शक्ल रही—लकड़ी के किसी कुंदे में से काटकर निकाला गया एक ठोस चक्का, जिसके केन्द्र में धुरा फंसाने के लिए एक छेद होता था। लेकिन इसे भी औजारों के बिना नहीं बनाया जा सकता था। इसके लिए आरी, बरमे, चाकू, रंदे आदि की जरूरत पड़ी ही होगी। इससे इस संभावना का भी संकेत मिलता है कि खान खोदने, धातु को गलाने और ढालने का आविष्कार होने के बाद ही पहिए का आम प्रचलन हो सका होगा, क्योंकि इस काम के लिए पत्थर के औजार उपयुक्त नहीं हो सकते थे। यद्यपि कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओं का विश्वास है कि किंवदंती अरसे

फारमोसा की पहिया गाड़ी। इसमें लकड़ी की कीलों के सहारे धुरा लगाया गया है।

और जर्मनी के आल्प्स पर्वतीय क्षेत्र के झील-निवासी आदिमानव लगभग बीस हज़ार साल पहले पहिएदार गाड़ियों का उपयोग किया करते थे, लेकिन विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर ज्ञात होता है कि पहिए का प्रचलन 4000 से 3500 वर्ष ईसा पूर्व सीरिया और सुमेरिया में ही सबसे पहले शुरू हुआ था। 3000 ईसा पूर्व तक मेसोपोटामिया में पहिए का खासा प्रचलन शुरू हो चुका था और सिंधु घाटी में यह लगभग 2500 वर्ष ईसा पूर्व पहुंचा।

आश्चर्य की बात है कि इसके कई शताब्दी बाद तक मिस्र में पहिए की कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन बाद में प्रचलन होने पर इसका वहां विकास भी खूब हुआ। संभवतः मिस्रवासियों ने ही लगभग 1800 ईसा पूर्व अरेदार पहिए का आविष्कार किया जो सामान्य तवे की आकृति के पहिए से कहीं अधिक हल्का और मजबूत सिद्ध हुआ। तवे की आकृति का पहिया भारी वजन के कारण प्रायः टूट जाता था। पहिए को अलग-अलग भागों में—नाभि, नेमि और इन दोनों को जोड़ने वाले अरे—जोड़कर बनाने से भार का दबाव समान

रूप से वितरित हो जाता है। मिस्रवासियों ने एक सुधार किया—उन्होंने धुरे के ऊपर तख्ता रखने की बजाए ढंग का एक डिब्बा या बाडी बनाई। मिस्रियों की इस दो पहिए की गाड़ी को ग्रीको और प्राचीन रोमनों ने अपना लिया। वे इसका उपयोग युद्ध के रथ के रूप में या धार्मिक सवारियों के रूप में अथवा दौड़ के लिए किया करते थे। तब तक बैल की जगह, जोकि सवारी खींचने के लिए सिखाया गया पहला पशु था, अब घोड़े का भी व्यापक प्रचलन आरम्भ हो गया था, जो कि बैल की अपेक्षा कहीं अधिक तेज चलता था, देखने में शानदार लगता था और जिसे सिखाना भी अधिक आसान था। अन्त में रोमनों ने चार पहियों वाली गाड़ी का आविष्कार किया जिसमें अलग धुरे पर घूमने वाले अगले पहियों को अधिक आसानी से अगल-बगल घुमाया जा सकता था। इस सुधार के बाद ही यह वाहन परिवहन के आम साधन के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर सका।

परन्तु केवल गाड़ियां ही अपने आप में परिवहन की सुविधा नहीं प्रदान कर सकतीं। इनके लिए सड़कों की भी जरूरत होती है। सड़कें आज हमारे लिए एक सचाई हैं, लेकिन जब तक रोमनों ने दूर-दूर तक फैला अपना साम्राज्य स्थापित नहीं कर लिया तब तक शायद ही किसी प्राचीन राष्ट्र ने सड़कों के महत्त्व को समझा। ग्रीक लोगों का विश्वास था कि पेड़-पौधों, झाड़ियों, पहाड़ों और झरनों सभी में आत्मा होती है या इनमें देवताओं का वास होता है, इसलिए वे प्रकृति को छेड़ना या उसके काम मे बाधा डालना ठीक नहीं समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने बहुत कम सड़कें बनाईं और जो बनाईं भी वे मन्दिर के
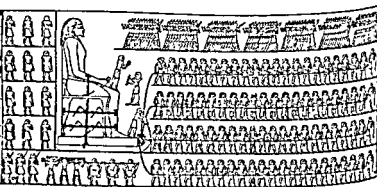
पहिए को अपनाने के पहले मिस्रवासी अपनी विशाल प्रतिमाओं को सैनिकों के पहरे में दासों द्वारा खींची जानेवाली स्लेजों के जरिये ढोते थे।
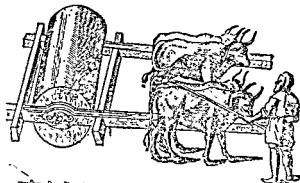
प्राचीन ग्रीस में एफीसस स्थित डायना के मंदिर के लिए स्तंभों का परिवहन

मार्गों जैसी ही थी तथा उनके किनारे कब्रें और धार्मिक स्मारकों की पंक्तियां बनी हुई थीं। पथरीली जमीन पर ग्रीक सड़कें गाड़ियों के पहियों की लीकों के अलावा और कुछ नहीं होती थीं और उनकी चौड़ाई इतनी कम होती थी कि सामने से आती हुई दूसरी गाड़ी गुजर नहीं सकती थी। ईरानियों ने इससे
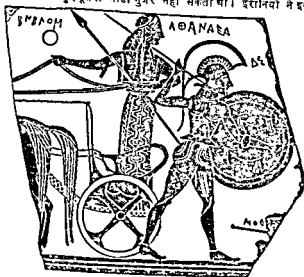
एक प्राचीन ग्रीक सैनिक रथ (एक घड़े पर बना चित्र)

बेहतर काम किया, उन्होंने सूसा से एशिया माइनर और भारत तक के लिए राजमार्ग बनवाए और उनके किनारे सराएं और आगे के लिए घोड़े मिलने के अड्डे बनवाए। बताया जाता है कि उनकी डाक व्यवस्था बहुत अच्छी थी। लेकिन उनकी सड़कों का मुख्य काम वही था जो तीन हजार साल बाद हिटलर ने अपने अत्याधुनिक राजमार्गों 'आटोबानेन' से पूरा किया, और वह काम था सेनाओं को जल्दी से और आसानी से मनचाही जगह पहुंचाना। चीनियों ने भी कुछ बहुत अच्छी सड़कें बनायी थीं जो उनके शासकों के लिए सामरिक उद्देश्य की पूर्ति करती थीं।

सड़क निर्माण में इन देशों का चाहे कितना ही महत्त्व क्यों न हो लेकिन इस क्षेत्र में रोमनों ने जो काम किया उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। उन्होंने न केवल अपने देश में ही सड़कों का जाल बिछाया, बल्कि अपने जमाने के लगभग सम्पूर्ण ज्ञात संसार में स्काटलैंड की सीमाओं से लेकर फारस की खाड़ी तक

दासों और बंदियों के परिवहन के लिए प्राचीन रोमन दो पहिया गाड़ी

और काकेशस से लेकर ऐटलस पर्वतमाला तक सड़कें बिछा रखी थीं। निश्चय ही यह उन्होंने आम जनता के हित की दृष्टि से नहीं, बल्कि अपने सैनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथा अपने व्यापारियों और अफसरों की सुविधा के लिए किया था।

रोमनों की राजमार्ग व्यवस्था संगठनात्मक, तकनीकी और प्रशासनिक दृष्टि से बड़ी उल्लेखनीय मानी जाती है। रोमन सम्राटों के जमाने में इन सड़कों की कुल लम्बाई पचास हजार मील से भी अधिक थी। चाहे पहाड़ और नदियां [illegible] के मैदान और दलदल हों रोमन इंजीनियरों ने कहीं भी हिम्मत

नहीं हारी और अपनी सड़कें निकाल ली। ये सड़कें इतनी मजबूत और टिकाऊ थीं कि इनका पूरे साल इस्तेमाल किया जा सकता था। इन पर से होकर पैदल और घुड़सवार सेनाएं जाती थीं, हल्के रथ और ढकी हुई भारी गाड़ियां गुजरती थीं।
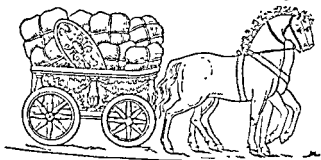
चार पहियों वाली प्राचीन रोमन मालवाहक गाड़ी

स्थानीय परिस्थितियों और उपलब्ध सामान के अनुरूप इन सड़कों के निर्माण में विभिन्न विधियों का उपयोग किया गया था। आमतौर से पहले नीचे पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े बिछाये जाते थे और उनके ऊपर रोड़ियों और छोटे पत्थरों की तह जमायी जाती थी, और फिर इसके ऊपर से बालू और मिट्टी बिछा दी जाती थी। इसके ऊपर सतह पर या तो तराशे हुए पत्थरों के टुकड़े बैठाए जाते थे या चूने के मसाले से रोड़ियों को बैठाया जाता था। दलदल वाले या ऐसे स्थानों में जहां पत्थर बहुत कम मिलता था, मिट्टी की मोटी तह पर लकड़ी की पटरियां बैठायी जाती थीं। अधिकांश सड़कों के किनारे पत्थरों से जड़े होते थे और सड़कों के किनारे पैदल चलने के लिए शहरों और गांवों में पटरियां बनायी जाती थीं। सड़कों की चौड़ाई 12 फुट से 20 फुट तक की रखी जाती थी और उन इलाकों में जहां वर्षा अधिक होती थी, सड़कों पर इतना ढाल रखा जाता था कि पानी आसानी से बहकर निकल सके।

रोमन राजमार्गों के निर्माण पर बहुत अधिक धन खर्च हुआ, लेकिन फिर भी खर्च राज्य के खजाने पर भारी नहीं पड़ता था। जब सैनिकों के लिए लड़ाई-भिड़ाई का कोई काम नहीं होता था, तो उन्हें सड़क बनाने के काम पर लगा दिया जाता था। जीते हुए देशों से भी सड़क निर्माण में बेगार करवाई जाती थी। धनी रोमन सड़क निर्माण के लिए अपने धन को समर्पित किए जाते थे। बड़े और सफल संगठन कर्ताओं को ही सड़कों का निरीक्षक नियुक्त किया

प्राचीन पोम्पेई की एक गली से बड़ी सड़क में किनारे के पत्थर
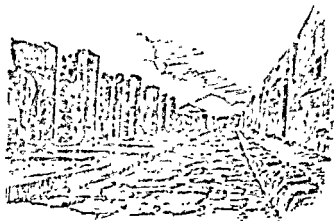
जाता था। जूलियस सीजर कुछ समय तक आप्पिया मार्ग का संरक्षक था। सम्राट आगस्टस अनेक सड़कें अपने धनी सभासदों के सुपुर्द कर दिया करता था और उनकी देखभाल मरम्मत आदि की जिम्मेदारी भी उन्हें ही सौंप देता था। उसने स्वयं फ्लामीनिया मार्ग की देखभाल की जिम्मेदारी ले रखी थी। छोटे नगरों में सड़कों की देखभाल का काम और कहीं-कहीं तो उनके निर्माण की जिम्मेदारी भी धनियों और सम्पत्ति के मालिकों के सुपुर्द होती थी।

जहां कहीं रोमनों के आने के पहले से काम-चलाऊ सड़कें मौजूद थीं, जैसा इंगलैंड में था, वहां रोमनों ने उन सड़कों को सीधा करने और मजबूत बनाने का काम किया तथा उन्हें चौड़ा करवाया और पक्का बनवाया। रोमनों ने जिन सड़कों को शानदार राजमार्गों में बदल दिया उनमें से कुछ हैं—डेवन से लिंकनशायर जाने वाली फॉस वे, स्टोनहेंज से ईस्ट एंजिलया जाने वाली इक्नील्ड वे तथा डोवर से लंदन होती हुई चेस्टर जाने वाली वाल्टिंग स्ट्रीट, आदि।

जैसे ही विजित देशों से रोमन वापस गए कि उनकी सड़कें नष्ट होने लगीं, कुछ तो इनका उपयोग ही बहुत कम होने लगा था और कुछ इसलिए भी कि इनकी देखभाल में कोई रुचि नहीं लेता था। रोमन साम्राज्य की समाप्ति हो गई। इटली की तरह इनमें से कई देशों में कोई ऐसा सशक्त केन्द्रीय शासन ही नहीं रह गया था जिसे देश में सड़कों के जाल की जरूरत होती। बाद में जो छोटी-छोटी रियासतें कायम हुईं, उन्हें भी सड़कों की अच्छी देखभाल में कोई

रुचि नहीं थी, उल्टे उन्हें डर होता था कि अगर सड़कें अच्छी हालत में होंगी तो पड़ोसी रियासतें उन पर हमला कर देंगी। नतीजा यह था कि मध्य युग के शुरू के आधे समय में उस पूरे इलाके में जो कभी रोमन साम्राज्य का अंग था, शायद ही कोई नयी सड़क बनायी गयी हो। गाड़ियों को बड़ी कठिनाई से टूटी-फूटी सड़कों पर चींटी की चाल से चलना पड़ता था। मुसाफिरों को गर्मियों में धूल भरे रास्तों से गुजरना पड़ता था और बरसात के दिनों में उनकी गाड़ियां कीचड़ में फंस जाती थी। जब इस तरह की कोई सड़क बिलकुल बेकार हो जाती थी तो ठीक करने की बजाय उसे बिलकुल छोड़ दिया जाता था और उसकी बगल से दूसरा रास्ता काट लिया जाता था। कई बार ये रास्ते इतने सकरे और गहरे होते थे कि इनमें वर्षा का पानी भर जाता था और मुसाफिरों को तैर कर इनसे बाहर आना पड़ता था।

सारे यूरोप मे इंगलैंड की सड़कें सबसे खराब मानी जाती थी। जर्मनी में कम से कम कुछ ऐसे राजमार्ग तो थे जिन्हें मरम्मत करके कुछ काम लायक रखा जाता था। तेरहवी शताब्दी मे स्थिति मे कुछ सुधार हुआ। जर्मनी की सबसे पुरानी विधि संहिता 'साशेस्पाइगेल' मे राजमार्ग के संबध मे नियम लिखा है : "राजमार्ग इतना चौड़ा होना चाहिए कि गाड़िया एक-दूसरे की बगल से एक साथ गुजर सकें। पैदल चलनेवालों को चाहिए कि वे घुड़सवारों को गाड़ियों के लिए रास्ता छोड़ें, और घुड़सवारों को गाड़ियों के लिए रास्ता छोड़ना चाहिए, तथा खाली गाड़ियों के लिए रास्ता छोड़ना चाहिए।"

इंगलैंड की सड़कें इतनी खराब थी, इसीलिए शायद पहले आधुनिक सड़क इंजीनियरों का विकास भी यहीं हुआ। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण इंजीनियर थे जॉन मेट्काफ, जिनका जन्म 1717 में हुआ था। उन्हें छह वर्ष की आयु में चेचक के कारण अपनी आंखों की ज्योति खो देनी पड़ी थी। लेकिन फिर भी उन्हें ब्रिटेन के एक सर्वाधिक योग्य सड़क-निर्माता का सम्मान प्राप्त हुआ। तीस साल के दौरान उन्होंने 180 मील लम्बी सड़कें बनायी। इनमें से ज्यादातर उनके अपने इलाके लंकाशायर और चेशायर में बनीं।

मेट्काफ सड़क बनाने में रोमनों वाली पद्धति का ही प्रयोग करते थे। सबसे पहले बड़े-बड़े पत्थरों की ठोस नींव भरते थे, उसके बाद रोड़ी और छोटे पत्थरों की कई तहें बिछवाते थे। अन्तर केवल यह था कि मेट्काफ़ उसके ऊपर पत्थर की पक्की सतह नहीं बनवाते थे। इसके अलावा वे नाली के लिए थोड़ी जगह भी छोड़ देते थे।

मध्य और उत्तरी इंगलैंड के कुछ इलाकों में औद्योगिक विकास के बढ़ने के

कारण नयी सड़कों की जरूरत भी बहुत बढ़ गई। अब मेट्काफ को मौका मिलना चाहिए था। लेकिन अधिकारियों को यह समझाना आसान नहीं था कि एक अंधा आदमी जो यहां-वहां घूमकर बाजा बजाया करता था—मेट्काफ सचमुच 1745 की क्रांति में युद्धभूमि में बाजा बजाने का काम किया करते थे—सड़कें भी बना सकता है। जब उन्हें तीन मील लम्बी एक सड़क बनाने का काम सौंपा गया, उस समय वे 50 वर्ष के हो चुके थे। उन्होंने अंधा होने पर भी आंख वाले इंजीनियरों की अपेक्षा अधिक तेजी से, बेहतर और अधिक सस्ती सड़क तैयार कर दी। इसके बाद से उन्हें एक के बाद एक सड़क बनाने का काम मिलता गया।

अंधे मेट्काफ ने रास्ता दिखाया, लेकिन उनका अनुसरण करने में दूसरों को समय लगा। उनके चालीस साल बाद पैदा हुए टामस टेलफोर्ड ने अपनी जन्मभूमि (स्काटलैंड) छोड़ी और दक्षिण में जाकर पुल बनवाने का काम शुरू किया। लेकिन कुछ समय बाद ही अपने पर्वतीय देश भाइयों को भुखमरी से बचाने के लिए उन्होंने वापस लौटकर नहरें और सड़कें बनाना शुरू किया। वे चाहते थे कि सड़क यथा सम्भव समतल हो और उसके बीच का भाग भारी से भारी वजन को सहन करने योग्य मजबूत हो। वे दो सतहों में पत्थर की नींव भरवाते थे जिनमें से प्रत्येक तीन इंच मोटी होती थी और जिसकी खाली जगहों में हाथ से छोटे-छोटे पत्थर भरे जाते थे, इसके ऊपर वाले पत्थर के टुकड़ों की तह सात इंच मोटी होती थी और इसके ऊपर कंकड़ की एक इंच मोटी तह बिछायी जाती थी।

उन्हीं के समकालीन और देशभाई जॉन मैकेडेम ने दूसरी विधि अपनाई। उन्होंने नींव में टूटे हुए पत्थरों की एक मोटी तह की बजाय कई तहें बिछवाईं। थोड़े समय में ही छोटे पत्थर दबकर बैठ जाते थे और चिकनी और सख्त सतह तैयार हो जाती थी। यह विधि सस्ती और थोड़ा वक्त लेने वाली थी, लेकिन उनकी सड़कें टेलफोर्ड की सड़कों के बराबर टिकाऊ नहीं हो सकती थीं। वे मौजूदा सड़कों की मरम्मत उन्हें तोड़कर करते थे और उसी सामान से नई सड़कें बना दिया करते थे।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में मोटरकार का प्रचलन शुरू होने तक सड़क-निर्माण की तकनीक में बहुत अधिक विकास नहीं हो सका। लेकिन तब तक इंजीनियरों के लिए सड़क बनाने के इंजन या रोड-रोलर के समान उपयोगी मशीन उपलब्ध हो चुकी थी। इसका आविष्कार केन्ट के टामस एवलिंग ने किया था, जो एक किसान और कृषि मैकेनिक रह चुके थे। उन्होंने पहली बार

1865 में अपनी मशीन का प्रदर्शन किया। भाप इंजन से चलने वाली इ
भारी-भरकम मशीन को देखकर घोड़े भड़क जाते थे और बच्चे के लोग चकि

सड़क कूटने का एक भाप-चालित रोलर (1900)
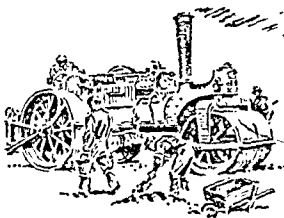
रह जाते थे। यहां तक कि लोगों ने उसका विरोध करना शुरू किया
पुलिस ने उस पर रोक लगा दी। यही नहीं, अदालत में उसके खिलाफ मु
भी दायर हो गए। जब 1867 में लिवरपुल की नगरपालिका ने ऐसे सड़क इ
का आर्डर दिया तब कहीं जाकर स्थिति बदल सकी। जब भारत और चीन
इसके आर्डर मिलने लगे तब तो सरकारी अधिकारियों ने भी इस नयी मशी
में रुचि लेना शुरू किया। वर्तमान सड़क-इंजन डीज़ल से चलते हैं। अतिरि
भार के लिए इसके भारी सिलिंडरों को पानी से भर दिया जाता है। कुछ
भी इंजन होते हैं जिनके सिलिंडर खुरदरे होते हैं और डामर की सड़कों को
करने के लिए उन्हें भीतर से ही कोयले की भट्टी से गरम किया जाता है।

ब्रिटेन के 1878 के राजमार्ग और रेल इंजन अधिनियम के लागू हो
बाद आधुनिक सड़क के इतिहास का एक नया युग आरम्भ हुआ। इसके
ही वह पुरानी प्रणाली भी समाप्त हो गई जिसके तहत सड़क का उपयोग करने
को उसके निर्माण और उसकी देखभाल के लिए शुल्क देना पड़ता था।
पहली बार राज्य ने स्वीकार किया कि सड़क उसकी जिम्मेदारी होनी
सम्भालनी चाहिए।

सड़क-निर्माण भी अठारहवीं सदी के उन दिनों की अपेक्षा अब बहुत बदल चुका है जबकि उसके कर्तव्यों में यह भी शामिल माना जाता था कि वह बीमार और मृत पशुओं को तथा रोगी व्यक्तियों को सड़क से हटाने का इंतजाम करेगा। उसे सड़क की सफाई की जिम्मेदारी भी लेनी पड़ती थी, गड्ढों और नालियों को साफ करने का काम करना पड़ता था और हर चार महीने में सार्वजनिक रूप से यह सूचना देनी पड़ती थी कि सड़क में क्या खराबी आ गई है। यह सूचना रविवार को चर्च में धार्मिक प्रवचन के बाद पढ़कर सुनाई जाती थी। इस स्थिति में तब जमीन-आसमान का फर्क आया, जब 1928 में लंदन विश्वविद्यालय में राजमार्ग इंजीनियरों के प्रथम पीठ की स्थापना हुई।

अब काम की आवश्यकता के अनुसार सड़क निर्माण में विभिन्न तकनीकों का उपयोग किया जाता है और गलियों से लेकर मोटरों की सड़कों तक के निर्माण में तरह-तरह की विधियां अपनाई जाती हैं। लेकिन अब सिद्धान्ततः नींव और सतह को दो पृथक् भाग माना जाता है। नींव अब भी टेल्फोर्ड की विधि से ही भरी जाती है—कड़े और भारी पत्थर, पुरानी कंक्रीट या ईंटों की रोड़ियां आदि बिछा दी जाती हैं, या कंक्रीट की बड़ी-बड़ी पटरियां बिछाई जाती हैं। आमतौर से नींव की तह के ऊपर कोयले या किसी चीज की पुरानी राख की एक तह फैलाई जाती है ताकि नीचे का पानी ऊपरी सतह पर पहुंच सके। इसके ऊपर से दस टन वजन का रोलर घुमा दिया जाता है।

अधिकांश देशों में सड़कें अब भी रोड़ी, मिट्टी और गारे से बनाई जाती हैं, जो प्रायः स्थानीय रूप से ही मिल जाते हैं। इस पथपथ मसाले को अच्छी तरह से पानी पिलाया जाता है और फिर ऊपर से रोलर घुमाकर बैठा दिया जाता है। भारी और तेज रफ्तार मोटरों के लिए बनने वाली सड़कों पर आमतौर से तारकोल बिछाया जाता है। तारकोल में भी बारीक बजरी मिलाकर सड़क पर उसकी तह जमाई जाती है। तारकोल बिटुमनी कोयले से प्राप्त होता है। इसे कारखाने में कोयले की विशेष भट्टियों में तैयार किया जाता है। इसे गरम करके सड़कों पर बिछाना पड़ता है। यह सड़क पर पत्थर की सतह बिछाने से अधिक सस्ता पड़ता है, इसलिए अब इसी का आम प्रचलन हो गया है।

तेज रफ्तार वाली मोटरों के लिए बनने वाली अत्याधुनिक सड़कों के नीचे आमतौर से इस्पात का ढांचा बिछाकर ऊपर से कंक्रीट की ठोस नींव भारी जाती है। यह भारी परिवहन का दबाव आसानी से सहन कर सकती है। पत्थर की रोड़ी बालू या बजरी और सीमेंट के मिश्रण को पानी में घोल कर कंक्रीट तैयार की जाती है ताकि पानी अन्दर न जा सके। कंक्रीट के सूख जाने पर उसके ऊपर

रोड़ी या डामर की तह बिछाई जाती है। लेकिन आजकल रिवाज है कि कंक्रीट
को कुछ साल तक ऐसे ही छोड़ दिया जाता है, और उसके बाद उसकी सतह
पर कुछ बिछाया जाता है। लेकिन सड़क बनाने की विधियों में परिवर्तन होता
रहता है। हर साल नयी किस्म के मसाले, साज-सामान, मशीनें और तकनीकें
प्रचलित होती रहती हैं। यही नहीं, इस क्षेत्र में यूरोप और अमरीका में तथा
संसार के अन्य देशों में भी शोध का काम जारी रहता है।

प्राचीन पैदल पुल

फिर भी सड़कों और राजमार्गों की सर्वोत्तम व्यवस्था भी तब तक उपयोगी
सिद्ध नहीं हो सकती जब तक कि बीच में पड़ने वाले नदी-नालों पर अच्छे पुलों
का अभाव हो और रास्ता बीच में ही रुक जाता हो। पुल भी सड़कों के समान
ही महत्वपूर्ण हैं, और लगभग उतने ही पुराने भी हैं।

आदिमकाल में पुल तो सिवा इसके और कुछ नहीं होते थे कि किसी लम्बे
पेड़ को पानी की धारा पर इस पार से उस पार तक लिटा दिया जाता था। इसके
बाद नावों को तख्तों से जोड़कर भी पुराने ज़माने में पुल बनाए गए। जेरक्सीज़
ने 450 ई॰ पू॰ में इसी प्रकार हेलीस्पोंट नदी पार की थी। सेमीरामिस
(लगभग 800 ई॰ पू॰) के ज़माने में बेबीलन में यूफ्रेटस नदी में खड़े कि
गए पत्थर के खंभे शायद किसी पुल को सहारा देने के काम आते थे। प्राची
चीन में भी अनेक नदियों और नहरों पर झूला पुल डाले गए थे, जो रस्सों
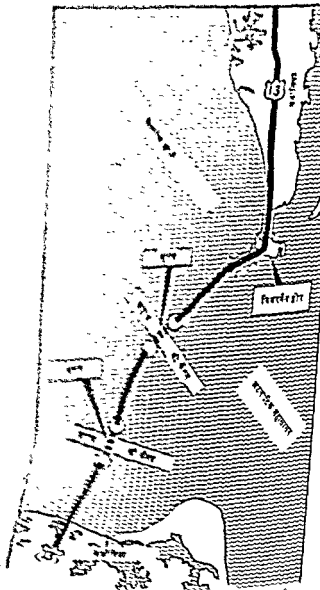
[illegible] के चेसापीक खाड़ी के आर-पार पुल और सुरंग का मार्ग।

न्यूयार्क में ईस्ट नदी पर बने तीन झूला पुल इससे पुराने हैं। न्यूयार्क और न्यूजर्सी के बीच के हड़सन पुल का केन्द्रीय विस्तार 3,500 फुट है और यह अमरीका का सबसे आश्चर्यजनक पुल माना जाता है। इसे ओ० एच० अम्मान की देखरेख में इंजीनियरों के एक दल ने बनाया था। सानफ्रांसिस्को में गोल्डन गेट पर बना नया झूला पुल इससे भी ज्यादा लम्बा है। इसका बीच का विस्तार 4,200 फुट है और अगल-बगल के दोनों विस्तार प्रत्येक 1,100 फुट का है।

यूरोप का सबसे बड़ा पुल ईस्टर्न शेल्ट नदी के मुहाने पर तीन डच द्वीपों को जोड़ता हुआ बना है। सबसे अधिक सुन्दर पुल लिस्बन में टागस नदी पर 1965 में बनकर तैयार हुआ। इस पर बनी सड़क नदी से 260 फुट ऊपर है और इसका विस्तार 3, 318 फुट है। इसके पहले लिस्बन में कोई पुल नहीं था, इसीलिए वहां के निवासी इस पुल पर बड़ा गर्व करते हैं।

1964 में स्काटलैंड का नया फोर्थ सड़क पुल बनकर तैयार हुआ। इस अत्यन्त प्रभावशाली झूला पुल का केन्द्रीय विस्तार 3, 300 फुट है और इसके अगल-बगल के विस्तारों की लंबाई इसकी कुल लंबाई की 2/5 है। इस पर इस्पात की 500 फुट ऊंची मीनारें बनी हैं। इसके दोनों रस्सों में 30, 000 मील लम्बा तार लगा है। प्रत्येक रस्सा दो फुट मोटा है और उसमें गालवनीकृत उच्च तनाव वाले इस्पात के 11, 618 समानान्तर तार लगे हैं। इस प्रकार के इस्पात के ये तार पहली बार पुल के लिए तैयार किए गए थे। इसकी कुल लम्बाई डेढ़ मील है। और यह बेंजामिन बेकर द्वारा 1882 से 1890 के बीच बनाए गए बाहुधरन फर्थ एंड फोर्थ रेलवे पुल का योग्य सहयोगी प्रतीत होता है, जिसकी कुल लम्बाई 8200 फुट से अधिक है।

इतना होने पर भी हम यह नहीं कह सकते कि झूला पुल बनाने से संबद्ध सारी समस्याएं हल की जा चुकी हैं। उदाहरणार्थ, जब तेज हवा चलती है तो पुल पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। अभी इसका ठीक-ठीक हल नहीं निकल सका है, क्योंकि जब 1940 में अमरीका में टैकोमा नैरोज पर बना पुल गिर पड़ा तो लोगों को मालूम हुआ कि बीसवीं शताब्दी में भी इंजीनियर लोग प्राय: ऐसी गम्भीर गलतियां कर सकते हैं। बिलकुल यही भविष्यवाणी ब्रिस्टल के समीप ब्रूनेल द्वारा 1832 से 64 तक 32 साल में बनाए गए प्रसिद्ध क्लिफ्टन पुल के लिए भी की जाती रही है। लेकिन 702 फुट के विस्तार वाला यह पुल, जिसकी ऊंचाई ज्वार के समय के पानी से 245 फुट है, अब भी अपनी जगह पर कायम है। हमने पहले फोर्थ नदी के बाहुधरन पुल का उल्लेख किया था। यह एक प्रकार का कैंचीदार पुल होता है। इस प्रकार के पुल की आरंभिक जानकारी

प्राचीन चीनियों को भी थी। इस तरह के पुल में दोनों तरफ से लम्बी-लम्बी कैंचियाँ बीच में आकर छाम के सहारे जोड़ दी जाती हैं। फोर्थ के रेल पुल में दो विस्तार हैं जिनमें से प्रत्येक 1, 710 फुट लम्बा है और तीन कैंचियाँ हैं जो गर्डर के पृथक् विस्तारों से जुड़ी हुई हैं। क्यूबेक के सेंट लारेंस पुल का मुख्य विस्तार 1, 800 फुट है और इसकी कैंचियाँ दोनों किनारों पर से शुरू होती हैं।

जहाँ लम्बे विस्तारों की आवश्यकता नहीं होती वहाँ गर्डर का पुल ही उपयोगी होता है। यह सबसे पहले तब शुरू हुआ जब 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में पिटवाँ लोहे की तकनीक का विकास हुआ। जब जार्ज स्टेफेंसन के लड़के राबर्ट ने मेनाई जलसंधि पर ब्रिटानिया पुल का निर्माण 1846 से 1850 तक किया, तो इस नयी निर्माण सामग्री की महती सम्भावनाओं के प्रति संसार के इंजीनियरों का ध्यान आकर्षित हुआ। इसमें पिटवाँ लोहे की प्लेटों और 'ऐंगलेरन' से बनी नलकीदार गर्डरें लगी हैं। यह पानी में ईंटों वगैरह से बने तीन खम्भों पर टिका है। और इसके दो विस्तारों में से प्रत्येक की लम्बाई 460 फुट है, जो कि ब्रुनेल द्वारा बनाए गए साल्टाश के पुल के विस्तारों से कुछ अधिक ही है। यह 1859 में पूरा हुआ।

गर्डर के पुल आमतौर से सुन्दर नहीं लगते और आसपास के प्राकृतिक दृश्य में बेतुके से प्रतीत होते हैं। लेकिन मेहराबदार पुल देखने में सुन्दर लगते हैं और उनसे नगर की शोभा ही बढ़ती है। यही कारण है कि आरंभ से इंजीनियर मेहराबदार पुल बनाना पसन्द करते रहे हैं। जब इन पुलों को पत्थर या ईंट से बनाया जाता है, तो इनका विस्तार अधिक लम्बा नहीं हो सकता, लेकिन अठारहवीं सदी के बाद से इसके लिए लोहे और बाद में इस्पात का प्रयोग होने लगा। परन्तु 1864 में ही कहीं जाकर पिटवाँ लोहे का कोई महत्त्वपूर्ण मेहराब-

प्रबलित कंक्रीट
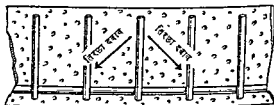
दार पुल बनाया जा सका। यह पुल कोब्लेन्ज में राइन नदी पर बना। इसमें तीन विस्तार थे, जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई 315 फुट थी। वर्तमान युग का एक—विस्तार वाला संसार का सबसे बड़ा मेहराबदार पुल आस्ट्रेलिया का सिडनी हार्बर पुल है। राल्फ फ्रीमेन द्वारा 1932 में पूरे किए गए इस पुल की मेहराब का विस्तार 1,650 फुट है। संसार का सबसे ऊंचा पुल नार्वे और स्वीडन के बीच स्वाइन संड नदी पर 1946 में बनकर तैयार हुआ।

पुल और सुरंग का एक अद्वितीय संयोजन अमरीका के वर्जीनिया क्षेत्र में चेसापिक खाड़ी के आरपार 1963 में बनकर तैयार हुआ। इसमें होकर जो राजमार्ग जाता है, उसे 'ओशन हाईवे' कहते हैं। और वह न्यूयार्क को फ्लोरिडा राज्य के जैक्सनविले से जोड़ता है। इसकी वजह से अमरीका के पूर्वी किनारे के मोटर मार्ग में 70 मील की कमी हो जाती है। इस साढ़े सत्रह मील लम्बे पुल-सुरंग मार्ग के खुलने के पहले मोटर-चालकों को अपनी गाड़ियों के साथ जहाजों में खाड़ी पार करनी पड़ती थी। इस संयोजन में 12 मील लम्बा 'घोड़ी पुल' पानी की सतह से 30 फुट ऊंचा है। चार कृत्रिम द्वीप हैं जिनमें से प्रत्येक 1,500 फुट लम्बा है। इन्हीं पर आधारित होकर दो सुरंगें जाती हैं जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक मील से अधिक है। ये सुरंगें जहाजों के लिए बने दो मुख्य मार्गों के नीचे से गुजरती हैं। दो ऊंचे पुल हैं जिनके नीचे से बड़े जहाज गुजर सकते हैं। इनके अलावा बीच में एक प्राकृतिक द्वीप पड़ता है जिसकी वजह से डेढ़ मील का प्राकृतिक सेतु और प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार पुल और सुरंग का यह संयोजन अपने आप में बड़ा अनूठा बन पड़ा है।

मध्य युग में पुल-निर्माण के कार्य को बहुत कुछ धार्मिक भावना से देखा जाता था। आज यह न केवल एक तकनीकी महत्त्व का कार्य है, बल्कि एक कलात्मक कार्य भी माना जाता है, और साथ ही यह एक आधारभूत सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति भी करता है। आज पुल का निर्माण करने वाले इंजीनियर को अपनी डिजाइन बनाने और पुल के लिए आवश्यक साज-सामान जुटाने के पहले उन लोगों की आवश्यकताओं का भी अध्ययन करना पड़ता है जिनके उपयोग के लिए पुल बनाया जाता है। इतना होने पर भी यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि पुल आसपास की दृश्यावली के अनुरूप हो। यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि उसके ऊपर से होकर किस प्रकार का और कितना ट्राफिक गुजरेगा तथा उसके नीचे से किस प्रकार की नावों और जहाजों को निकलना होगा। पुल के लिए आवश्यक साज-सामान में लकड़ी, पत्थर, ईंट, इस्पात, हल्की मिश्र-धातुएं और पहले से पकी की गयी या प्रबलित कंक्रीट सम्मिलित है। इनमें से अंतिम तीन
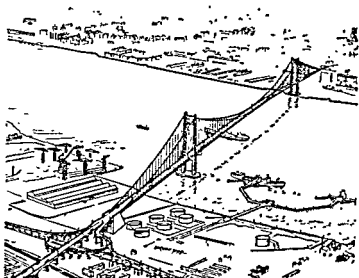
चित्रकार की दृष्टि में बर्कनहेड से मेरसे पुल का एक दृश्य। सड़क नदी के 280 फुट ऊपर बनी है।

वस्तुएं, विशेष रूप से कंक्रीट आजकल ज्यादा पसन्द की जाती है। कंक्रीट को इस्पात की छड़ों के प्रयोग से प्रबलित बनाया जाता है, क्योंकि वैसे यह कमजोर होता है। कंक्रीट को प्रबलित बनाने का इससे भी अच्छा तरीका यह है कि गीली कंक्रीट में ही तारों का जाल बिछा दिया जाता है, जिन्हें कंक्रीट के ठीक से बैठ जाने के बाद जैक से कस दिया जाता है।

अच्छा पुल मजबूत, कम खर्च और साथ ही देखने में सुन्दर होना चाहिए। अधिकांश प्रसिद्ध पुलों के निर्माण में सौंदर्य शास्त्र का भी ध्यान रखा गया है। परन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं।

संसार का एक सबसे प्रसिद्ध पुल लंदन का टावर पुल है जो अपने आकार या सुन्दरता के कारण नहीं, बल्कि लंदन नगर की एक विशेषता होने के कारण प्रसिद्ध है। यह खुला या उठाया जा सकने वाला पुल है और पुराने जमाने के उन उठाऊ पुलों का ही एक विकसित रूप है जो किले की खाइयों पर बनाए जाते थे। सर हॉरेस जोन्स और सर जे० वूल्फ द्वारा 1894 में 15 लाख पौंड की लागत से बनाए गए इस पुल में 200 फुट की दूरी पर दो भारी मीनारें बनी हैं। और इसका कुछ भाग दो बड़े झूला पुलों के रूप में बना है। बीच के दो हिस्से

जो कि वास्तव में सड़क के अंग हैं, डेढ़ मिनट के अंदर ऊंचे उठाए जा सकते हैं ताकि पुल के नीचे से जहाज आसानी से गुजर सके। पुल के जो हिस्से ऊंचे उठते हैं वे दोनों लगभग सौ फुट लम्बे हैं। टावर पुल सुन्दरता की दृष्टि से कोई दर्शनीय वस्तु नहीं है, लेकिन लंदन-वासियों को यह पुल इतना प्रिय है कि इसकी जगह वे शायद कोई और पुल पसन्द नहीं करेंगे।

सड़क और पुल बनाने का शिल्प बहुत पुराना है, लेकिन नहर खोदने का काम भी उतना ही पुराना है। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि इंजीनियरी के क्षेत्र की अपेक्षाकृत हाल की उपलब्धि स्वेज नहर, वास्तव में परिवहन के इतिहास की एक अत्यन्त प्राचीन योजना की आधुनिक परिणति मात्र है।

प्राचीन इतिहासकार हीरोडोटस तथा उससे 400 वर्ष बाद ईसा के जन्म-काल के आसपास हुए भूगोलविद स्त्राबो ने स्वेज जल-संधि के आरपार बनी उस नहर का उल्लेख किया है जो भूमध्य सागर और लाल सागर को मिलाती थी। इस प्राचीन नहर के निर्माण का काम मिस्र के राजा नीको द्वारा सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में आरम्भ कराया था। हीरोडोटस ने लिखा है कि इस काम में 1,20,000 दासों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा—हो सकता है, इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो। बाद में नीको के उत्तराधिकारी ने इसे पूरा कराया। परन्तु रेगिस्तान की बालू बार-बार नहर में भर जाती थी और उसे बन्द कर देती थी। यहां तक कि अन्त में मिस्रवासियों को अपना प्रयास हमेशा के लिए छोड़ देना पड़ा। उन्होंने अनेक नहरें और नील नदी को जोड़ने वाले जलमार्ग भी बनाए थे जिनके कुछ अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं।

नीको के महान विरोधी बेबीलोन के सम्राट नेबूशादनज़ार ने बहुत बड़ी संख्या में नहरें बनवाई थीं। आज भी दजला नदी के इलाके में मुसाफिरों को उस नहर के अवशेष मिल जाते हैं जो हाइत प्रदेश से 400 मील दूर फारस की खाड़ी तक गयी थी। ऐसा लगता है कि इस नहर से तीन तरह के काम लिए जाते थे—जहाज़रानी, सिंचाई और लड़ाकू खानाबदोश जातियों से हिफ़ाज़त। चीन में तिएंत्सिन से हेंचाओ तक की 650 मील लम्बी महान नहर इससे भी ज्यादा लम्बी थी। इसके निर्माण में छठी से तेरहवीं शताब्दी तक सदियों का समय लगा था। परन्तु यह आज भी दैनिक उपयोग में आ रही है। चीनियों ने एक ऐसी समस्या के हल का भी प्रयास किया था, जिसके कारण पश्चिमी संसार में नहरों के विकास का काम आगे नहीं बढ़ सका था। वह थी नहरों के मार्ग में पड़ने वाली विभिन्न ऊंचाई की सतहों पर काबू पाने की समस्या। चीनियों ने एक सतह से दूसरी
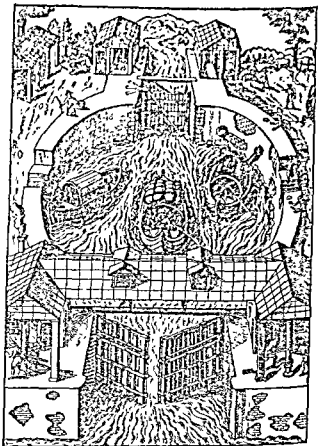
प्राचीन इतालवी जलकपाट।

सतह पर नावों को ऊंचा उठाने या नीचे ले जाने के लिए कई तरीके निकाले। वे या तो नावों को पहिएदार पालनों जैसी युक्तियों के जरिए या रोलरों पर रखकर खिसकाते थे, या इसके लिए बड़े-बड़े सबल हौजों का प्रयोग करते थे।

लेकिन यह समस्या जलपाश के आविष्कार से ही वास्तव में हल हो सकी। इसके बाद तो नहर देश में परिवहन का एक मुख्य साधन बन गयी। नौकाओं को नहर की एक सतह से दूसरी तक उठाने या नीचे ले जाने के लिए जलपाश एक

सरल किन्तु बड़ा आश्चर्यजनक साधन सिद्ध हुई। जलपाश प्रणाली में लकड़ी, ईंट-पत्थर आदि के प्रयोग से एक बड़ा कक्ष बनाया जाता है जिसके दोनों सिरों पर द्वार होते हैं। इन द्वारों के नीचे कपाट लगे होते हैं। इन कपाटों को जलपाश के बाहर से संचालित किया जा सकता है। जब कोई नाव कक्ष में प्रवेश कर जाती है तो उसके पीछे वाला द्वार बंद कर दिया जाता है और सामने वाले द्वार के नीचे के कपाट खोल दिए जाते हैं। इस तरह नीची या ऊंची सतह के अनुसार पानी कक्ष से बाहर की ओर बह जाता है या बाहर से कक्ष में आ जाता है। जब जलपाश के पानी का स्तर आगे की नहर के स्तर के बराबर हो जाता है तो सामने वाला द्वार खोल दिया जाता है और नाव अपनी यात्रा पर आगे बढ़ जाती है।

डच लोगों का दावा है कि जलपाश का आविष्कार उन्होंने किया, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह आविष्कार इटली के विटेर्बो नामक स्थान के डोमेनिको-बन्धुओं द्वारा 1480 में किया गया था। कुछ साल बाद लियोनार्दो दा विंची ने मिलान नगर की नहरों को जोड़ने के लिए छह जलपाश बनाए थे। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि डच लोगों ने ही सबसे पहले इस आविष्कार का व्यापक उपयोग किया। हालैंड आज भी सबसे बढ़िया नहरों वाला देश है। सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में फ्रांसीसियों, स्वीडनवासियों और रूसियों ने भी जलपाश वाली नहरें बनाईं। इंगलैंड में सबसे बाद में नहरों का उपयोग शुरू हुआ लेकिन कुछ ही दिनों में यह इस क्षेत्र में कई देशों से आगे निकल गया। जिस व्यक्ति को ब्रिटेन की प्रथम और सर्वोत्तम नहरें बनाने का श्रेय प्राप्त है, वह था जेम्स ब्रिंडले (1716-72)। उसने बहुत कम शिक्षा पाई थी और डर्बीशायर में पहिए बनाने का काम सीखा था। परन्तु एक इंजीनियर के रूप में उसकी प्रतिभा अद्वितीय थी और वह कहा करता था, कि तकनीकी ज्ञान मुझे अपने आप स्वभाव से प्राप्त हुआ है।

1750 के आसपास ब्रिजवाटर के ड्यूक ने लंकाशायर की अपनी कोयला खदानों का कोयला वोर्सले से मैनचेस्टर तक जल्दी और कम खर्च में पहुंचाने के लिए ब्रिंडले को यह काम सौंपा कि वह 40 मील लम्बी एक नहर तैयार कर दें। इसके बाद से एक कुशल इंजीनियर और यन्त्रविद् के रूप में ब्रिंडले का नाम चारों ओर फैल गया। ब्रिजवाटर नहर 1755 में बनकर तैयार हुई जिसे बाद में मर्से तक बढ़ा दिया गया। यह इंगलैंड की पहली औद्योगिक नहर थी और अपने जमाने में संसार का एक महान आश्चर्य मानी जाती थी। साधारण लोगों से इंजीनियर तक इसकी प्रशंसा करते थे। इस नहर का काम खत्म करने के तुरन्त बाद ही ब्रिंडले ने मैनचेस्टर से लिवरपुल तक लगभग 30 मील लम्बी एक दूसरी नहर

बनाने का काम शुरू कर दिया यह नहर मंचेस्टर के उत्पादनों को जहाजों तक पहुंचाने और कच्चे माल को बन्दरगाह से मैनचेस्टर की मिलों तक लाने के लिए बनाई गई थी।

नहर निर्माण में ब्रिटेन की महान सफलता से दूसरों को भी प्रेरणा मिली और 75 साल के भीतर ही—जब तक कि रेलों ने सवारियों और माल को ढोने की जिम्मेदारी संभालनी शुरू नहीं कर दी—ब्रिटेन में लगभग 3000 मील लम्बी बढ़िया नहरों का जाल बिछ गया। इनमें कैलेडोनियन, फोर्थ एंड क्लाइड, ग्रायनन, ग्रैंड यूनियन, ट्रैंट नेविगेशन, ग्लोसेस्टर एंड बर्कले शिप, लीड्स और लिवरपुल तथा बर्मिंघम नामक नहरें विशेष उल्लेखनीय हैं। औद्योगिक क्रांति के आरम्भिक युग में ये नहरें भारी सामान, कच्चा माल और तैयार माल के यातायात का मुख्य साधन थीं। इनमें से कुछ में यात्री-नौकाएं भी चला करती थीं।

आज के ब्रिटेन में लगभग 2000 मील लम्बी नहरें काम में आ रही हैं। इनमें सबसे लम्बी ग्रैंड यूनियन नहर प्रणाली है जो देश के मध्य भाग को लंदन बंदरगाह से जोड़ती है। यही नहीं, जो नहरें आज किसी खास काम की नहीं रह गई हैं वे भी सैलानियों तथा कुछ समय के लिए नगर के शोर-शराबे से दूर किसी शांत वातावरण की खोज करने वालों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं। ये नहरें प्रकृति के शांत सौन्दर्य में वृद्धि करती हैं और सैर-सपाटे के काम भी आती हैं।

नये राष्ट्र अमरीका ने अपनी पहली नहर 1792 में बनाई जो मैसाचूसेट्स राज्य के साऊथ हैडले से शुरू होती थी। इसके बाद अनेक व्यावसायिक और औद्योगिक महत्त्व की प्रसिद्ध नहरें बनीं। इनमें लंबी ईरी नहर जो ईरी झील को हडसन नदी से मिलाती है, फिलिप्सबर्ग से जर्सीसिटी तक की मौरिस नहर तथा बीसवीं सदी में बनी 790 मील लम्बी स्टेट बार्ज कैनाल जो न्यूयार्क नहर से बफैलो तक गयी है। अमरीका के जलमार्गों तक का नियंत्रण अमरीकी सेना करती है।

निश्चय ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नहर वह होती है जो किसी थल-संधि से गुजरती है। और इस प्रकार एक ऐसा छोटा मार्ग बनाती है जिसकी वजह से जहाज किसी पूरे महाद्वीप या प्रायद्वीप का चक्कर लगाने से बच जाते हैं। इस तरह की नहरों में सबसे छोटी है चार मील लम्बी कोरिंथ नहर जो कोरिंथ और ऐजिना की खाड़ियों को जोड़ती है। पुराने जमाने में जब ग्रीक लोगों के जहाज चलते थे, तब मनुष्यों और पशुओं द्वारा खींचकर जहाज इस थल-संधि के पार पहुंचाए जाते थे। सबसे पहले सीजर ने इस नहर को निकालने का सुझाव दिया था और नीरो के शासनकाल में 67 ईसवी में शुरू होकर यह नहर 1893

में ही पूरी हो सकी।

हम स्वेज नहर की बहुत शुरू की योजनाओं का उल्लेख कर चुके हैं। सदियों खलीफा हारूं–अल्-रशीद, से लेकर नेपोलियन तक अनेक बड़े-बड़े सम्राट ऐसी एक नहर की कल्पना करते रहे, लेकिन अन्त में इसका श्रेय फ्रांसीसी राजनयज्ञ और इंजीनियर फर्डिनाड द लेसेप्स को प्राप्त हुआ जो 1830 के आसपास काहिरा में वाणिज्यदूत के रूप में नियुक्त था। उसे 1854 में मिस्र के तत्कालीन शासकों तुर्क लोगों, फ्रांसीसी सरकार और पश्चिमी यूरोप के कुछ आर्थिक क्षेत्रों के हाथ लम्बी और पेचीदा बातचीत चलाने के बाद स्वेज थल-संधि को काटकर नहर निकालने की अनुमति प्राप्त हो सकी।

द लेसेप्स को उस नहर को निकालने में पूरे दस साल का समय लगा जिसकी वजह से यूरोप से पूर्वी देशों की यात्रा को जाने वाले जहाजों को पूरे अफ्रीका महाद्वीप का चक्कर लगाने से मुक्ति मिल सकी। उसे आर्थिक कठिनाईयों, महामारियों और दुर्घटनाओं, राजनैतिक षड्यन्त्रों और तकनीकी कठिनाइयों के समान अनेक कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा, लेकिन वह साहसी फ्रांसीसी इंजीनियर दृढ़ता के साथ अपने काम में जुटा रहा। जब 17 नवम्बर 1869 को स्वेज नहर का उद्घाटन हुआ तो उस अवसर पर यूरोप के आधे देशों के नरेश और संसार के लगभग सभी देशों के राजनयज्ञ और गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के संगीतकार वेर्दी ने इस अवसर के लिए एक विशेष ओपेरा 'आयदा' की रचना की और उसे पहली बार उद्घाटन वाली रात्रि को प्रस्तुत किया।

फर्डिनांड द लेसेप्स उस दिन सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में सम्मिलित हुआ और उसके बाद वह आराम और सकून से अपनी जिन्दगी काट सकता था। लेकिन उसके बाद वह ऐसी ही एक दूसरी महत्त्वाकांक्षी योजना में फंस गया—उसने कुछ ही साल बाद अमरीकी थल-संधि को काटकर एक नहर निकालने का बीड़ा उठा लिया। अटलांटिक और प्रशांत महासागरों को जोड़ने वाली एक नहर की कल्पना स्पेनी आक्रमणकारियों के जमाने से की जा रही थी। सोलहवीं सदी में इस नहर के चार संभावित मार्गों पर विचार किया गया लेकिन स्पेनी, फ्रांसीसी और अंग्रेज उपनिवेशवादियों के आपसी झगड़ों के कारण इंजीनियरों को अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने का मौका नहीं मिल सका। फिर अठारहवीं सदी के अन्त में स्पेनी—औपनिवेशिक साम्राज्य के पतन के बाद मध्य और दक्षिणी अमरीका में क्रांति और गृहयुद्ध का लम्बा दौर शुरू हो गया। अन्त में स्वेज नहर के शानदार उदाहरण से राजनीतिज्ञों और बड़े-बड़े धनिकों को

भविष्य में भी होने वाले हैं। 1959 मे खोली गयी सेंट लारेंस सीवे नामक नहर ने कनाडा के समुद्र तट को दो गुना बड़ा दिया है और अमरीका को एक उत्तरी समुद्रतट प्रदान किया है। ईरी ओंटारियो झीलों के बीच की वेलैंड जहाजी नहर (जो 1930 मे खोली गयी थी) तथा अन्य नहरों को मिलाकर बनाई गयी नयी सेंट लारेंस सीवे से होकर बड़े-बड़े जहाज सीधे शिकागो तक पहुंच सकते हैं। इसके लिए ओंटारियो झील और मोंट्रियल के बीच सात नये जलपाश बनाए गए. तथा सेंट लारेंस नदी से शुरू करके इन सभी झीलों से होते हुए लगभग 300 मील लम्बे क्षेत्र मे जलमार्ग को 22 फुट तक गहरा बनाया गया। अनुमान है कि इस नहर से होकर प्रतिवर्ष पाच करोड़ टन माल का यातायात होता है।

सेंट लारेंस नहर प्रणाली मे अनेक बड़ी-बड़ी जल-विद्युत् परियोजनाएं भी सम्मिलित हैं, जो जल-इंजीनियरी का एक अन्य आधुनिक पक्ष है। इसी प्रकार भारत उपमहाद्वीप मे सिंध परियोजना भी अपनी विशालता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसके 1970 के दशक मे पूरा होने की सम्भावना है। यह हिमालय क्षेत्र में रूस और चीन की सीमा पर हिन्दूकुश पर्वत से लेकर हिन्द महासागर पर स्थित कराची बन्दरगाह तक फैली है। जब यह तैयार हो जाएगी तो इससे 10 करोड़ एकड़ भूमि मे सिंचाई हो सकेगी और लगभग पाच लाख किलोवाट विद्युत् शक्ति प्राप्त की जा सकेगी। इसके अलावा सिंधु और आधा दर्जन अन्य नदियों को नहरों से मिलाकर परिवहन के लिए एक बड़ा उपयोगी जलमार्ग तैयार हो सकेगा। विश्वबैंक के साथ ही ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और न्यूजीलैंड से इस परियोजना के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही है।

हमारे युग में रूस भी एक प्रथम कोटि के इंजीनियर राष्ट्र के रूप मे आगे आया है। सोवियत संघ में आबादी वाले इलाकों के बीच की असाधारण दूरियों और कृषि क्षेत्र की अत्यधिक विशालता तथा बिजली की तेजी से बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए रूसी इंजीनियरों द्वारा नहरों के अधिक से अधिक उपयोग के लिए प्रयत्नशील होना स्वाभाविक ही माना जाएगा। सिंचाई की व्यवस्था में विस्तार करना उनका प्रथम महत्त्व का उद्देश्य है तथा परिवहन और विद्युत उत्पादन को उनके यहां द्वितीय और तृतीय महत्त्व का स्थान प्राप्त है। रूसियों ने 1930 के आसपास ही नहर परियोजनाओं का काम बड़े पैमाने पर शुरू किया। बीच मे विश्व युद्ध के कारण कुछ बाधा उत्पन्न हुई, लेकिन 1945 के बाद से इस क्षेत्र मे बहां बड़ी तेजी के साथ प्रगति हुई है।

सोवियत शासनकाल की पहली सबसे बड़ी नहर बाल्टिक-श्वेत सागर नहर 1933 में खुली—140 मील लम्बा यह जलमार्ग वास्तव मे जहाजों के लिए एक

भविष्य में भी होने वाले हैं। 1959 में खोली गयी सेंट लारेंस सीवे नामक नहर ने कनाडा के समुद्र तट को दो गुना बढ़ा दिया है और अमरीका को एक उत्तरी समुद्रतट प्रदान किया है। ईरी ओंटारियो झीलों के बीच की वेलैंड जहाजी नहर (जो 1930 में खोली गयी थी) तथा अन्य नहरों को मिलाकर बनाई गयी नयी सेंट लारेंस सीवे से होकर बड़े-बड़े जहाज सीधे शिकागो तक पहुंच सकते हैं। इसके लिए ओंटारियो झील और मोंट्रियल के बीच सात नये जलपाश बनाए गए. तथा सेंट लारेंस नदी से शुरू करके इन सभी झीलों से होते हुए लगभग 300 मील लम्बे क्षेत्र में जलमार्ग को 22 फुट तक गहरा बनाया गया। अनुमान है कि इस नहर से होकर प्रतिवर्ष पांच करोड़ टन माल का यातायात होता है।

सेंट लारेंस नहर प्रणाली में अनेक बड़ी-बड़ी जल-विद्युत् परियोजनाएं भी सम्मिलित हैं, जो जल-इंजीनियरी का एक अन्य आधुनिक पक्ष है। इसी प्रकार भारत उपमहाद्वीप में सिंध परियोजना भी अपनी विशालता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसके 1970 के दशक में पूरा होने की संभावना है। यह हिमालय क्षेत्र में रूस और चीन की सीमा पर हिन्दूकुश पर्वत से लेकर हिन्द महासागर पर स्थिति कराची बन्दरगाह तक फैली है। जब यह तैयार हो जाएगी तो इससे 10 करोड़ एकड़ भूमि में सिंचाई हो सकेगी और लगभग पांच लाख किलोवाट विद्युत् शक्ति प्राप्त की जा सकेगी। इसके अलावा सिंधु और पांच दर्जन अन्य नदियों को नहरों से मिलाकर परिवहन के लिए एक बड़ा उपयोगी जलमार्ग तैयार हो सकेगा। विश्वबैंक के साथ ही ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और न्यूजीलैंड से इस परियोजना के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही है।

हमारे युग में रूस भी एक प्रथम कोटि के इंजीनियर राष्ट्र के रूप में आगे आया है। सोवियत संघ में आबादी वाले इलाकों के बीच की असाधारण दूरियों और कृषि क्षेत्र की अत्यधिक विशालता तथा बिजली की तेजी से बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए रूसी इंजीनियरों द्वारा नहरों के अधिक से अधिक उपयोग के लिए प्रयत्नशील होना स्वाभाविक ही माना जाएगा। सिंचाई की व्यवस्था में विस्तार करना उनका प्रथम महत्त्व का उद्देश्य है तथा परिवहन और विद्युत उत्पादन को उनके यहां द्वितीय और तृतीय महत्त्व का स्थान प्राप्त है। रूसियों ने 1930 के आसपास ही नहर परियोजनाओं का काम बड़े पैमाने पर शुरू किया। बीच में विश्व युद्ध के कारण कुछ बाधा उत्पन्न हुई, लेकिन 1945 के बाद से इस क्षेत्र में वहां बड़ी तेजी के साथ प्रगति हुई है।

सोवियत शासनकाल की पहली सबसे बड़ी नहर बाल्टिक-श्वेत सागर नहर 1933 में खुली—140 मील लम्बा यह जलमार्ग वास्तव में जहाजों के लिए एक

प्रेरणा मिली तथा 1879 में द लेसेप्स को अपनी योजना को कार्यान्वित करने का मौका दिया गया।

उसने इसके लिए पनामा के आर-पार 44 मील लम्बा मार्ग चुना। लेकिन इसके लिए अनेक जलपाशों का निर्माण जरूरी था और इसमें खर्च भी बहुत अधिक होना था। 1881 में काम शुरू हुआ, लेकिन अभी तक एक चौथाई काम ही पूरा हो गया था कि 1888 में पनामा नहर कंपनी दीवालिया घोषित कर दी गयी। एक बड़ा भारी आर्थिक विवाद उठ खड़ा हुआ जिसने पूरे काम को झकझोर डाला। 84 वर्ष के बूढ़े द लेसेप्स और उसके पुत्र पर अव्यवस्था, घूसखोरी और भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए और दोनों को जेल में बन्द कर दिया गया। हालांकि बाद में द लेसेप्स को मुक्त कर दिया गया और उसके विरुद्ध लगाए गए सारे आरोप भी वापस ले लिए गए, लेकिन तब तक वह शरीर और मन से बुरी तरह टूट चुका था। कुछ ही दिनों में वह संसार से कूच कर गया। अमरीकनों ने नहर परियोजना को फ्रांसीसियों से अपने हाथ में ले लिया। अन्त में 1914 में कहीं जाकर नहर पूरी हो सकी और पहला जहाज उसे पार करके एक महासागर से दूसरे महासागर में पहुंचा। इस नहर के निर्माण में महामारी और उष्ण-कटिबंधीय बीमारियों के कारण फ्रांसीसियों के जमाने में लगभग 50,000 व्यक्तियों को और अमरीकियों के जमाने में 5,000 व्यक्तियों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

कील नहर दो समुद्रों को जोड़ने वाली एक अन्य महत्त्वपूर्ण नहर है। यह होल्सटाइन क्षेत्र से होकर गुजरती है तथा बाल्टिक सागर को उत्तरी सागर से मिलाती है। जर्मनी ने 61 मील की इस नहर का निर्माण 1890 के आसपास मुख्य रूप से जहाजरानी के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया था, क्योंकि तत्कालीन जर्मन सम्राट विल्हेल्म द्वितीय ने एक समुद्री ताकत के रूप में ब्रिटेन को ललकारने का इरादा किया था। लेकिन बाद में कील नहर ने व्यापारिक जहाजरानी के क्षेत्र में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जलमार्ग के रूप में अपना स्थान बना लिया। इसकी वजह से अटलांटिक और ब्रिटिश चैनल के बन्दरगाहों तथा स्कैंडिनेविया और रूस के बंदरगाहों में बड़ी आसानी से संबंध स्थापित हो गया।

हालैंड के लोग संसार में सबसे ज्यादा नहरों के आदी हैं और उनका दावा है कि सबसे बड़ी नहर उन्हीं के देश में है। रोटरडम को समुद्र से जोड़ने वाली इस नहर का नाम 'न्यूवे वाटरवेग' है। उनका यह दावा इस तथ्य पर आधारित है कि 13½ मील यह नहर गहराई और चौड़ाई में सबसे ज्यादा है—यह 41 फुट गहरी है तथा इसकी चौड़ाई तलहटी पर 246 फुट और सतह पर 525 फुट है।

हमारे अपने समय में नहर इंजीनियरी के अनेक उल्लेखनीय कार्य हुए हैं और

भविष्य में भी होने वाले हैं। 1959 मे खोली गयी सेंट लारेंस सीवे नामक नहर ने कनाडा के समुद्र तट को दो गुना बढ़ा दिया है और अमरीका को एक उत्तरी समुद्रतट प्रदान किया है। ईरी ओंटारियो झीलों के बीच की वेलैंड जहाजी नहर (जो 1930 मे खोली गयी थी) तथा अन्य नहरों को मिलाकर बनाई गयी नयी सेंट लारेंस सीवे से होकर बड़े-बड़े जहाज सीधे शिकागो तक पहुच सकते हैं। इसके लिए ओंटारियो झील और मोंट्रियल के बीच सात नये जलपाश बनाए गए, तथा सेंट लारेंस नदी से शुरू करके इन सभी झीलो से होते हुए लगभग 300 मील लम्बे क्षेत्र मे जलमार्ग को 22 फुट तक गहरा बनाया गया। अनुमान है कि इस नहर से होकर प्रतिवर्ष पाच करोड़ टन माल का यातायात होता है।

सेंट लारेंस नहर प्रणाली मे अनेक बड़ी-बड़ी जल-विद्युत् परियोजनाए भी सम्मिलित हैं, जो जल-इंजीनियरी का एक अन्य आधुनिक पक्ष है। इसी प्रकार भारत उपमहाद्वीप में सिंध परियोजना भी अपनी विशालता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसके 1970 के दशक मे पूरा होने की सभावना है। यह हिमालय क्षेत्र मे रूस और चीन की सीमा पर हिन्दूकुश पर्वत से लेकर हिन्द महासागर पर स्थित कराची बन्दरगाह तक फैली है। जब यह तैयार हो जाएगी तो इससे 10 करोड़ एकड़ भूमि में सिंचाई हो सकेगी और लगभग पांच लाख किलोवाट विद्युत् शक्ति प्राप्त की जा सकेगी। इसके अलावा सिंधु और आधा दर्जन अन्य नदियो को नहरों से मिलाकर परिवहन के लिए एक बड़ा उपयोगी जलमार्ग तैयार हो सकेगा। विश्वबैंक के साथ ही ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और न्यूजीलैंड से इस परियोजना के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही है।

हमारे युग में रूस भी एक प्रथम कोटि के इंजीनियर राष्ट्र के रूप मे आगे आया है। सोवियत सघ में आबादी वाले इलाकों के बीच की असाधारण दूरियो और कृषि क्षेत्र की अत्यधिक विशालता तथा बिजली की तेजी से बढती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए रूसी इंजीनियरों द्वारा नहरों के अधिक से अधिक उपयोग के लिए प्रयत्नशील होना स्वाभाविक ही माना जाएगा। सिंचाई की व्यवस्था मे विस्तार करना उनका प्रथम महत्त्व का उद्देश्य है तथा परिवहन और विद्युत उत्पादन को उनके यहां द्वितीय और तृतीय महत्त्व का स्थान प्राप्त है। रूसियो ने 1930 के आसपास ही नहर परियोजनाओं का काम बड़े पैमाने पर शुरू किया। बीच मे विश्व युद्ध के कारण कुछ बाधा उत्पन्न हुई, लेकिन 1945 के बाद से इस क्षेत्र मे वहां बड़ी तेजी के साथ प्रगति हुई है।

सोवियत शासनकाल की पहली सबसे बड़ी नहर बाल्टिक-श्वेत सागर नहर 1933 मे खुली—140 मील लम्बा यह जलमार्ग वास्तव में जहाजो के लिए एक

'जीने' की तरह है जिसमें लेनिनग्राद से लेकर मरमांस्क तक जहाजों को 350 फुट तक ऊंचा उठाना पड़ता है। अब श्वेत सागर न केवल बाल्टिक सागर से मिल गया है, बल्कि वोल्गा-बाल्टिक नहर के कारण बिल्कुल दक्षिण में कैस्पियन सागर से भी मिल गया है। यूक्रेन के इलाके में 600 मील की लम्बाई में बहने वाली नीपर नदी को भी काबू में कर लिया गया है और इसमें नीप्रोगेस का बिजलीघर चलाया जाता है जिसकी क्षमता पांच लाख किलोवाट से भी ज्यादा है।

मास्को अब रूस का देश के भीतरी भूभाग का सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह बन गया है। क्योंकि वोल्गा नदी में कालिनिन से कैस्पियन सागर तक जहाज आ-जा सकते हैं और नहरों के जरिए यह नदी श्वेतसागर और काले सागर से भी मिली हुई है। इस नहर प्रणाली में मास्को को मुख्य रूप से 80 मील लम्बी वह नहर सम्मिलित करती है जो मस्क्वा नदी को ऊपरी वोल्गा नदी से मिलाने के लिए 1932-7 में बनकर तैयार हुई थी।

सबसे पहले 1569 में तुर्क लोगों ने एक नहर के जरिए रूस की दो सबसे बड़ी नदियां वोल्गा और दोन को मिलाने का प्रयास किया था, और पीटर महान के दिनों से यह विचार रूस के इंजीनियरों के मन में उठता रहा। अन्त में यह योजना 1947 से 1952 के बीच पूरी हुई। स्तालिन की अधिकांश रूसी परियोजनाओं की भांति इसे भी बलात श्रम के आधार पर पूरा कराया गया। कुल 63 मील लम्बी वोल्गा-दोन नहर ने अब स्तालिनग्राद के इलाके को वोल्गा के पूर्वी मोड़ से जोड़ दिया है।

परन्तु केवल इतने से ही रूस की नहर-प्रणाली का पूरा हो जाना नहीं मान लिया जाना चाहिए। अभी पूरे देश में परियोजना और काम जारी है। इसमें संसार के सबसे बड़े जलविद्युत् स्टेशनों का निर्माण भी सम्मिलित है—जिनमें से एक क्विबिशेव में बनेगा और उसकी क्षमता 21 लाख किलोवाट होगी, तथा दूसरा वोल्गोग्राद में बनेगा, जिसकी क्षमता 17 लाख किलोवाट होगी। और, अभी तो यूराल के पीछे की ओर रूस के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में साइबेरिया का मैदान फैला पड़ा है, जो आधुनिक इंजीनियरी के चमत्कारी स्पर्श की प्रतीक्षा कर रहा है।

2
रेलों का विकास

जब हम रेल मार्ग का उल्लेख करते हैं तो हमारा तात्पर्य पूरी रेल-व्यवस्था से, रेल की पटरी, गाडी आदि से होता है। वास्तव मे रेलगाड़ी रेल-इजन से लगभग 2,500 साल पुरानी है।

अपने तकनीकी जीवन के आरम्भ मे ही मनुष्य ने यह मालूम कर लिया था कि अपनी स्लेजो को और बाद में अपनी गाड़ियो को चिकने पत्थर या लकड़ी के लट्ठों की समान्तर पटरियों पर अथवा रास्ते की कड़ी सतह पर काटकर बनाई गयी समान्तर नालियों मे खीचना ज्यादा आसान होता है। प्राचीन ग्रीक लोग आमतौर से ऐसी नालियों का ही उपयोग करते थे जो 2-3 इंच चौडी और 5-6 इच गहरी होती थीं और 3 से 5 फुट तक की दूरी पर बनी होती थी। अपने मन्दिर-मार्गों पर वे इन नालियों मे अपनी सजी-सजाई गाडिया धार्मिक उत्सवों के अवसर पर खीचा करते थे। उन्होने मटापान अतरीप का चक्कर लगाने से बचने के उद्देश्य से कोरिंथ की थल-संधि के पार जहाजों को खीचने के लिए लकड़ी की समान्तर पटरिया रेल की पटरियो की तरह बिछाई थी। ग्रीको ने खोज की थी कि औसत कच्ची सड़क पर जितना भार एक आदमी या एक घोड़ा खीच सकता है, उसका आठ गुना भार पटरियों पर रखकर आसानी से खीचा जा सकता है। सोलहवीं सदी के अन्त मे कुछ जर्मन खनिको को इंग्लैंड की खदानों के आधुनिकीकरण के लिए बुलाया गया था। ये जर्मन खनिक अपने साथ अपनी 'ट्रामवे' भी लाए—इस तरह उन्होने उस देश मे रेल की पटरियों का प्रथम प्रवेश कराया जो बाद मे रेलगाड़ी के जन्म-स्थान की ख्याति प्राप्त करने वाला था।

इस प्राचीन ट्रामवे मे लकड़ी की दो छरनो को एक-दूसरी के इतना पास-पास बिछाया जाता था कि दोनों के बीच लगभग एक इंच से ज्यादा की दूरी नही होती थी। डिब्बे के पेंदे मे या उसके धुरे में एक कांटा लगा होता था जो पटरियों के बीच की जगह मे अटका रहता था और इस तरह पहियों को पटरियों

'जीने' की तरह है जिसमें लेनिनग्राद से लेकर मरमांस्क तक जहाजों को 350 फुट तक ऊंचा उठाना पड़ता है। अब श्वेत सागर न केवल बाल्टिक सागर से मिल गया है, बल्कि वोल्गा-बाल्टिक नहर के कारण बिल्कुल दक्षिण में कैस्पियन सागर से भी मिल गया है। यूक्रेन के इलाके में 600 मील की लम्बाई में बहने वाली नीपर नदी को भी काबू में कर लिया गया है और इससे नीप्रोपेत्र का बिजलीघर चलाया जाता है जिसकी क्षमता पांच लाख किलोवाट से भी ज्यादा है।

मास्को अब रूस का देश के भीतरी भूभाग का सबसे महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह बन गया है। क्योंकि वोल्गा नदी में कालिनिन से कैस्पियन सागर तक जहाज आ-जा सकते हैं और नहरों के जरिए यह नदी अजोव सागर और काले सागर से भी मिली हुई है। इस नहर प्रणाली में मास्को को मुख्य रूप से 80 मील लम्बी वह नहर सम्मिलित करती है जो मस्क्वा नदी को ऊपरी वोल्गा नदी से मिलाने के लिए 1932-7 में बनकर तैयार हुई थी।

सबसे पहले 1569 मे तुर्क लोगों ने एक नहर के जरिए रूस की दो सबसे बड़ी नदियाँ वोल्गा और दोन को मिलाने का प्रयास किया था, और पीटर महान के दिनों से यह विचार रूस के इंजीनियरों के मन में उठता रहा। अन्त में यह योजना 1947 से 1952 के बीच पूरी हुई। स्तालिन की अधिकांश रूसी परियोजनाओं की भांति इसे भी बलात श्रम के आधार पर पूरा कराया गया। कुल 63 मील लम्बी वोल्गा-दोन नहर ने अब स्तालिनग्राद के इलाके को वोल्गा के पूर्वी मोड़ से जोड़ दिया है।

परन्तु केवल इतने से ही रूस की नहर-प्रणाली का पूरा हो जाना नहीं मान लिया जाना चाहिए। अभी पूरे देश में परियोजना और काम जारी है। इसमें संसार के सबसे बड़े जलविद्युत् स्टेशनों का निर्माण भी सम्मिलित है—जिनमें से एक स्थिरविरोव में बनेगा और उसकी क्षमता 21 लाख किलोवाट होगी, तथा दूसरा वोल्गोग्राद में बनेगा, जिसकी क्षमता 17 लाख किलोवाट होगी। और, अभी तो यूराल के पीछे की ओर रूस के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में साइबेरिया का मैदान फैला पड़ा है, जो आधुनिक इंजीनियरी के चमत्कारी स्पर्श की प्रतीक्षा कर रहा है।

2
रेलों का विकास

जब हम रेल मार्ग का उल्लेख करते हैं तो हमारा तात्पर्य पूरी रेल-व्यवस्था से, रेल की पटरी, गाड़ी आदि से होता है। वास्तव मे रेलगाड़ी रेल-इंजन से लगभग 2,500 साल पुरानी है।

अपने तकनीकी जीवन के आरम्भ मे ही मनुष्य ने यह मालूम कर लिया था कि अपनी स्लेजों को और बाद में अपनी गाड़ियों को चिकने पत्थर या लकडी के लट्ठों की समान्तर पटरियों पर अथवा रास्ते की कड़ी सतह पर काटकर बनाई गयी समान्तर नालियों में खींचना ज्यादा आसान होता है। प्राचीन ग्रीक लोग आमतौर से ऐसी नालियों का ही उपयोग करते थे जो 2-3 इंच चौड़ी और 5-6 इंच गहरी होती थी और 3 से 5 फुट तक की दूरी पर बनी होती थी। अपने मंदिर-मार्गों पर वे इन नालियों में अपनी सजी-सजाई गाड़ियां धार्मिक उत्सवों के अवसर पर खींचा करते थे। उन्होंने मटापान अंतरीप का चक्कर लगाने से बचने के उद्देश्य से कोरिंथ की थल-संधि के पार जहाजों को खींचने के लिए लकड़ी की समान्तर पटरियां रेल की पटरियों की तरह बिछाई थी। ग्रीकों ने खोज की थी कि औसत कच्ची सड़क पर जितना भार एक आदमी या एक घोड़ा खींच सकता है, उसका आठ गुना भार पटरियों पर रखकर आसानी से खींचा जा सकता है। सोलहवीं सदी के अन्त में कुछ जर्मन खनिकों को इंग्लैंड की खदानों के आधुनिकीकरण के लिए बुलाया गया था। ये जर्मन खनिक अपने साथ अपनी 'ट्रामवे' भी लाए—इस तरह उन्होंने उस देश में रेल की पटरियों का प्रथम प्रवेश कराया जो बाद में रेलगाड़ी के जन्म-स्थान की ख्याति प्राप्त करने वाला था।

इस प्राचीन ट्रामवे में लकड़ी की दो छरनों को एक-दूसरी के इतना पास-पास बिछाया जाता था कि दोनों के बीच लगभग एक इंच से ज्यादा की दूरी नहीं होती थी। डिब्बे के पेंदे में या उसके धुरे में एक कांटा लगा होता था जो पटरियों के बीच की जगह में अटका रहता था और इस तरह पहियों को पटरियों

से नीचे नहीं उतरने देता था। 1630 के आसपास मार्गन्थियन के एक खदान मालिक को सूझा कि अगर दोनों पटरियों को बीच में स्लीपरों के जरिए जोड़ दिया जाए तो इनके बीच की दूरी को काफी घटाया जा सकता है। जब भारी डिब्बों के गुजरते रहने के कारण लकड़ी की पटरियां घिस गयीं, तो उसने उनके ऊपर लोहे की पत्तियां जड़ दीं। लेकिन अब इस तरह लकड़ी के पहिए जल्दी घिसने लगे। अन्त में उन्हें भी लोहे का बनाया जाने लगा।
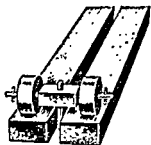
गाज कांटे के साथ एक आरम्भिक जर्मन खदान रेल की पटरी

लेकिन अब यह कठिनाई पैदा हुई कि चूंकि बीच के नियंत्रक कांटे का प्रयोग बन्द कर दिया गया था, इसलिए पहिए बार-बार पटरियों से नीचे उतर जाते थे। इसे रोकने के लिए पटरियों के एक किनारे पर कोर जड़ दी गयी, ताकि पहिए उतर न सकें। अठारहवीं सदी के अन्त में एक अंग्रेज इंजीनियर को विचार सूझा कि पटरी पर कोर लगाने की बजाए पहिए पर कोर लगानी चाहिए। यह तरीका सस्ता और इतना सफल सिद्ध हुआ कि उसके बाद से सभी रेल-वाहनों में कोरदार पहिए ही लगाए जाने लगे।

सबसे पहली लोहे की पटरियां 1767 में कोलबुकडेल के एक खदान इंजीनियर रेनाल्ड्स ने ढाली थीं। बाद में जेसप नामक एक अंग्रेज ने कुकुरमुत्ते के आकार की ऊपर से चौड़ी और बीच में सकरी पटरियों का आविष्कार किया, जिनका उपयोग आज भी जारी है। इस तरह अब वास्तविक रेलगाड़ी के पदार्पण के लिए रंगमंच तैयार हो गया था। रेलगाड़ी की सभी को उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा थी—सामान अधिक तेजी से और सुरक्षा के साथ देश में दूर-दूर तक पहुंचाया जाना था, लोगों को परिवहन के अधिक तीव्र माध्यम की जरूरत महसूस हो रही थी। लोगों में आम भावना थी कि भूमि-मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिए धनिकों को ही अपनी निजी गाड़ियों की सुविधा क्यों
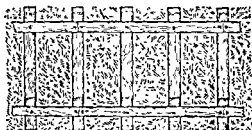
सत्रहवीं सदी में न्यूकैसल के समीप एक खदान में प्रयुक्त लकड़ी पटरी

प्राप्त हो, अथवा यह विशेष सुविधा केवल ऐसे ही लोगों को क्यों उपलब्ध रहे जो घुड़सवारी या घोड़ा गाड़ियों के जरिए लम्बी यात्रा कर सकने के लिए आवश्यक शारीरिक शक्ति से सम्पन्न हो।

हम प्रायः यह सोच लेते हैं कि इतिहास में नए विकास का आविष्कार के लिए केवल कुछ आविष्कारकों की दिमागी सूझ ही पर्याप्त रही है। लेकिन यह समझना कठिन नहीं है कि यदि उस आविष्कार की आवश्यकता या माँग न हो, यदि उसके लिए कोई सामाजिक आधार न हो तो वह आविष्कार और उसको सम्भव बनाने वाले लोग भी बिल्कुल असफल सिद्ध हो सकते हैं, यही कारण है कि अनेक आविष्कार तब तक बार-बार होते रहे जब तक उनके लिए आवश्यक स्थिति नहीं पैदा हो गई। दूसरी ओर, लोगों की जीवन-प्रणाली के किसी विकास

क्यूनो निर्मित एक भाप-चालित तोपगाड़ी

के कारण, किसी नयी समाज-व्यवस्था का उत्थान अथवा माँग के कारण आविष्कारकों के मस्तिष्क को किसी विशेष दिशा में सक्रिय होने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए यह केवल आकस्मिक नहीं था कि रेल और भाप-इंजन दोनों

को साथ-साथ ही पूर्ण विकास की स्थिति प्राप्त हुई, और दोनों का पहली बार इंगलैंड में मिलन हुआ जहां सामाजिक और आर्थिक विकास उस समय संसार में अन्यत्र कहीं से अधिक तेजी से जारी था।

राबर्ट स्टेफेंसन ने कहा था—"रेल-इंजन का आविष्कार किसी एक व्यक्ति द्वारा किया गया नहीं है, यह यांत्रिक इंजीनियरों के एक राष्ट्र द्वारा किया गया आविष्कार है।" वह राष्ट्र उस समय का सर्वदेशीयतावादी आधुनिक राष्ट्र था—क्योंकि फ्रांस और अमरीका ने ब्रिटेन से बहुत पहले भाप से चलने वाले वाहन तैयार किए थे, परन्तु शायद उस समय तक उन देशों को इन आविष्कार की बहुत जरूरत नहीं थी। फ्रांसीसी तोपखाने के अफसर निकोलस जोसेफ कूनो ने 1763 में राष्ट्रीय शस्त्रागार की सहायता से एक वाष्प-चालित तोपगाड़ी का पहला माडल तैयार किया था। सड़कों पर इसका परीक्षण भी किया गया, लेकिन कुछ समय तक धीरे-धीरे चलने के बाद इसमें गड़बड़ी पैदा हो गयी और यह उलट गयी। बाद में इसे शस्त्रागार में ही बन्द करके रख दिया गया ताकि इससे कोई हानि न हो सके। और, इस तरह इस विकास का अन्त हो गया।

इसी तरह 1770 में एक अमरीकी इंजीनियर ओलिवर इवान्स ने भाप से चलने वाली एक गाड़ी तैयार की थी। लेकिन इसमें भी लोगों ने कोई रुचि नहीं ली और सड़कें भी इसके लिए ठीक नहीं थीं। इसी कारण 1785 में एडिनबर्ग में विलियम साइमिंग्टन का भाप से चलने वाला सड़क—इंजन भी असफल रहा था। गैस-बत्ती के आविष्कारक विलियम मार्डोक ने ऐसी ही एक गाड़ी के साथ कुछ प्रयोग किया था, लेकिन उसके मालिकों बोल्टन एंड वाट कम्पनी ने उसे इस प्रयोग को आगे बढ़ाने से रोक दिया था, क्योंकि जेम्स वाट ने भाप-गाड़ी बनाने के लिए स्वयं पेटेंट प्राप्त कर लिया था।

कॉर्निश के एक युवा महान इंजीनियर और भाप-इंजन बनाने के शौकीन रिचर्ड ट्रेविथिक ने 1790 में अपनी वर्कशाप में गाड़ी खींचने वाले भाप-इंजनों के कुछ माडल बनाए थे। वह सड़क-परिवहन के लिए पूरे आकार का इंजन बनाना चाहता था। उसने 1801 में लोहे की एक बड़ी गाड़ी भी बना ली थी। इसके बीच में एक चिमनी थी और इसके आसपास सवारियों के बैठने के लिए सीटें बनी हुई थीं। उसने इसका नाम रखा था—"पफिंग डेविल" (छुक-छुक करने वाला दैत्य)। 'क्रिसमस' दिवस पर उसने अपने मित्रों को इसकी सवारी के लिए आमंत्रित किया। गाड़ी कुछ भी दूर तक तो काफी तेजी से चली, लेकिन फिर इसका इंजन बन्द हो गया। गाड़ी को एक सराय के अहाते में खड़ा कर

दिया और ट्रेविथिक और उसके दोस्त दावत पर जम गए। अचानक बड़ी कड़वी गंध फैल गयी, क्योंकि वह इंजन को बंद करना भूल गया था। इंजन का बायलर सूख गया और इंजन के कारण गाड़ीघर में आग लग गयी। इस प्रकार 'पफिंग डेविल' का अन्त हो गया।

उसकी दूसरी भापगाड़ी 1803 में सड़क पर यात्रा के लिए निकली। वह उसे कार्नवाल से लन्दन तक चलाकर लाया, लेकिन तब तक इंजन का तो जैसे कचूमर ही निकल गया। ट्रेविथिक इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भाप-इंजन सड़क पर चलाने योग्य वाहन नहीं है। इसलिए उसी ने सबसे पहले भाप-इंजन को पटरियों पर चलाया। पटरियों पर चलने वाले भाप-इंजन के ग्राहक की खोज के सिलसिले में उसे पता चला कि साउथ वेल्स के पैनी-डारन लोहा कारखाने की अपनी एक ट्रामवे थी, जो कार्डिफ तक जाती थी। यहां उसने पहिएदार भाप-इंजन बनाया जो रेल-परिवहन के लिए तैयार किया गया पहला इंजन सिद्ध हुआ। इस छोटे और भोंड़े-से इंजन में एक बड़ा गतिपाल पहिया और एक दंतीला पहिया लगा था और ये दोनों अगले और पिछले धुरों से जुड़े हुए थे—हालांकि यह सारी जुगत अनावश्यक थी। लेकिन यह इंजन दस मील लम्बी पटरियों पर 5 मील प्रति घंटे की रफ्तार से दस टन लोहे और सत्तर सवारियों से लदे पांच डिब्बों को खींच ले गया।

ट्रेविथिक को अब विश्वास हो गया कि वह एक अच्छे और उपयोगी काम में लगा था। लेकिन अब उसके सामने प्रश्न था कि इस इंजन को राष्ट्र के पैमाने पर कैसे प्रचलित किया जाए। उसने लंदनवासियों के सामने अपनी रेलगाड़ी प्रदर्शित करने का निश्चय किया। उसने 1808 में यूस्टन स्क्वायर में एक 'भाप सर्कस' आयोजन किया। इसमें छोटे से गोल घेरे में रेलगाड़ी चलती थी। और उसकी यात्रा की फीस एक शिलिंग रखी गयी थी। खेल देखने के लिए लंदनवासियों की भीड़ लग गयी। लेकिन खर्चा पूरा निकलने के पहले ही इंजन का एक पहिया टूट गया और इंजन उलट गया। खेल बीच में ही बन्द कर देना पड़ा।

उसी दिन से ट्रेविथिक के दुर्भाग्य के दिन शुरू हुए। उसे टाइफस ज्वर हो गया, उसका दीवाला निकल गया और उसे पेरू चला जाना पड़ा। जब उस देश में गृहयुद्ध छिड़ गया तो वह भागकर चिली और फिर कोलम्बिया चला गया। तरह-तरह के कामों में उसे कोई खास सफलता न मिल सकी। बाद में वह यूरोप लौट आया और गरीबी की हालत में ही 62 वर्ष की आयु में 1833 में उसकी मृत्यु हो गयी। लेकिन अपने जीवन काल में ही उसने एक अन्य व्यक्ति को उसी

होड़ में मदद होते हुए देख लिया जिसमें उसे असफलता का भागी होना पड़ा था—यह व्यक्ति था जार्ज स्टेफेंसन।

जार्ज स्टेफेंसन का जन्म 1781 में न्यूकैसल के समीप वायलाम में हुआ था। उसके पिता स्थानीय कोयला खान में खलासी का काम करते थे और बारह शिलिंग प्रति सप्ताह की तनख्वाह पाते थे। इतनी कम आमदनी में आठ व्यक्तियों के परिवार को भर पेट भोजन भी नहीं मिल पाता था। खर्च चलाना कठिन होता था। इसलिए परिवार के छह बच्चों में से कोई स्कूल नहीं गया और हरेक ने चलना सीखने के तुरन्त बाद ही काम करना शुरू कर दिया था। बालक जार्ज का पहला काम था, एक पड़ोसी की गायों और बतखों को खदान की रेल की पटरी पर आने से रोकना। इस रेलगाड़ी में घोड़े जोते जाते थे। नौ वर्ष का होने पर वह कोयले की छटाई का काम करने के लिए नीचे खदान में जाने लगा। वहां धीरे-धीरे वह सहायक फायरमैन बना और फिर न्यूकोमेन पम्प पर इंजन-ड्राइवर की तरह काम करने लगा, जहां उसके पिता खलासी का काम करते थे। स्टेफेंसन 18 वर्ष की आयु होने तक लिखना-पढ़ना कुछ नहीं जानते थे। बाद में एक सायंकालीन स्कूल में जाने लगे, जहां उन्हें एक पाठ की फीस एक पेनी देनी पड़ती थी। 19 वर्ष आयु में जब उन्होंने अपना नाम लिखना सीखा तो उनका सबसे खुशी का दिन था।

उन्हें बचपन से ही इंजनों का बड़ा शौक था। थोड़े ही समय में उन्होंने इंजन के बारे में इतनी जानकारी हासिल कर ली जितनी गणित और यांत्रिकी की शिक्षा पाए हुए—इंजीनियरों की भी नहीं होती थी। किलिंगवर्थ की कोयला खदान में वर्षों लोग उन्हें 'इंजन डाक्टर' के नाम से पुकारते रहे। यह स्टेफेंसन का सौभाग्य था कि उन्हें मालिक के रूप में लार्ड रेवेंस्वर्थ मिले थे। जो बड़े खुले दिल के आदमी थे और अगर कोई बात उन्हें पसन्द आती थी तो उसके लिए खुलकर खर्च करने को तैयार रहते थे। युवा इंजीनियर स्टेफेंसन उन्हें एक ऐसे रेल-इंजन में रुचि लेने के लिए राजी कराने में सफल हो गए जो खदान के मुंह से नहर तक ट्रामवे पर कोयले की ढुलाई के काम आ सकता था।

दो साल की कड़ी मेहनत के बाद 1814 में एक रेल-इंजन बनकर तैयार हुआ, और प्रशासन के एक जनरल के नाम पर, जिसने नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध में वेलिंगटन की मदद की थी, उसका नाम रखा गया 'ब्लूचर'। यह रेल-इंजन 30
लदे आठ डिब्बों को थोड़ी-सी चढ़ाई पर 4 मील प्रति घंटे की
सकता था। यह कोई बहुत अच्छा इंजन नहीं था और दिखाई

के घोड़ों से अधिक इस पर खर्च बैठता था। परन्तु इससे स्टेफेंसन को अपने इस विचार की पुष्टि में मदद मिली कि भाप की खिचाई और रेल का सम्बन्ध अविभाज्य है। उन्हें अब सन्देह नही था कि भविष्य में भूमि पर परिवहन रेलो के माध्यम से ही होगा।

एक साल बाद बना उनका दूसरा इंजन और भी बढ़िया सिद्ध हुआ, क्योंकि इसमें इन्होंने निकास की भाप का सम्बन्ध भट्टी से कर दिया था, जिसके कारण इंजन की शक्ति और भी बढ गयी थी। उन्होंने ढलवाँ लोहे की जगह पिटे लोहे के पहिए लगाए, पिस्टन और पहियों में सीधा सम्बन्ध बनाया, जोड़ने वाली छड के जोड़ गेंदनुमा बनाए तथा और भी कई तरह के सुधार किए। उन्होंने अपने पहले इंजन 'ब्लूचर' की खामियों से बहुत-कुछ सीखा था।

अब दूसरे खदान मालिक भी उनसे रेल-इंजन बनवाने लगे। इन्हें वे अपने लड़के राबर्ट की सहायता से बनाते थे, जिसे उन्होंने अच्छे स्कूलों में भेजकर अपने से अच्छी शिक्षा दिलवाई थी। लेकिन इन इंजनों में जनता की रुचि बहुत कम थी, और एक लम्बे समय तक जार्ज स्टेफेंसन अपनी इस मान्यता मे अकेले ही रहे कि "जो देश रेल-मार्ग बनाएगा, रेल-मार्ग उस देश को बनाएगें।"

स्थिति में तब निर्णायक मोड आया जब विशाल आकलैंड घाटी में स्टाकटन से डार्लिंगटन तक रेलवे लाइन बिछाने की अनुमति देते हुए पार्लियामेंट ने एक अधिनियम पास कर दिया। यह रेल सिर्फ माल ढोने के लिए ही नहीं, सवारियों को ले जाने के लिए भी थी। स्टेफेंसन तब तक रेल-इंजनों के अधिकारी विशेषज्ञ मान लिए गए थे। इस रेल का इंजन बनाने का काम उन्हें ही सौंपा गया और उन्होंने भी आश्वासन दिया कि मेरा इंजन 59 घोड़ों के बराबर ताकत वाला होगा। उन्होंने न्यूकैसल में एक व्यापारी के सहयोग से जो इंजन कारखाना खोला था, उसी में यह इंजन बनकर तैयार हुआ।

1825 में जब इस दस मील लम्बी रेल लाइन का उद्‌घाटन हुआ तो स्टेफेंसन ने स्वयं इसका इंजन चलाया, जिसका नाम 'एक्टिव' रखा गया था। यह इंजन कोयले और आटे से लदे छह डिब्बे, एक सवारी डिब्बा जिसमें कम्पनी के डाइरेक्टर गण अपनी-अपनी पत्नियों और मित्रों के साथ बैठे थे, सामान्य मुसाफिरों के लिए बने इक्कीस डिब्बे जिनमें अस्थायी रूप से सीटें लगी हुई थीं और अन्त में कोयले के छह डिब्बे और—इस तरह कुल 33 डिब्बों को खींच रहा था। आरम्भ में इसमें 450 व्यक्ति सवार थे, लेकिन यात्रा के अन्त में उनकी संख्या 600 हो गयी थी, क्योंकि बहुत से आदमी डिब्बों में चढ़ आए थे या उनसे लटक रहे थे। इस गाड़ी की रफ्तार आजकल के हिसाब से मामूली ही थी, लेकिन इसमें

सवार एक पत्रकार को यही रफ्तार कल्पनातीत प्रतीत हुई। उसने लिखा–"इसकी गति इतनी तेज थी कि रफ्तार अक्सर बारह मील प्रति घंटा प्रतीत होती थी।" दस मील की यह दूरी 65 मिनट में तय हुई। वापसी की यात्रा संगीतमय थी, क्योंकि माल के डिब्बों की जगह सवारी के अतिरिक्त डिब्बे जोड़ दिए गए थे और एक डिब्बे में बाजेवाले बैठे बाजा बजा रहे थे।

पहली बार सैकड़ों लोगों ने भाप की नयी और रहस्यमय शक्ति के माध्यम से परिवहन के आनन्द का अनुभव प्राप्त किया—पहली बार उन्होंने तेज रफ्तार की सवारी की सनसनी महसूस की। इनमें से बहुत से लोग तो उस समय घामे भयभीत और आशंकित हुए होंगे, जब उनका इंजन फुफकारता और दहाड़ता हुआ तेज-से-तेज घोड़ागाड़ी से भी कहीं ज्यादा तेज रफ्तार से दौड़ रहा होगा, और मकान और पेड़ उनके पास से भागते हुए निकले जा रहे होंगे, गांवों के लोग आंखें फाड़े उन्हें देख रहे होंगे, घोड़े भड़ककर दूर भाग रहे होंगे और गायें भय से रम्भा रही होंगी। एक नया युग शुरू हो गया था। समय और दूरी की वह रोक टूट रही थी, जिसने एक गांव को दूसरे गांव से और एक इलाके को दूसरे इलाके से अलग कर रखा था। "आप लोग अपने जीवन में ही उस दिन को देखेंगे जब रेलगाड़ी आवागमन के समस्त साधनों पर विजय प्राप्त कर लेगी।...जब एक मजदूर के लिए भी पैदल चलने की बजाए रेल में सफर करना ज्यादा सस्ता होगा।" स्टेफेंसन स्टाकटन में अपने मित्रों से कहा था, "मैं जानता हूं कि अनेक बड़ी कठिन और लगभग दुर्लंघ्य कठिनाइयों का सामना करना होगा—लेकिन फिर भी मैंने जो कुछ कहा है वह आपके सामने ही सही सिद्ध होगा।"

और, वास्तव में कठिनाइयां अनेक थीं, हालांकि आरम्भ में प्रगति उससे भी कहीं अधिक तेजी से जारी रही जिसकी स्टेफेंसन ने आशा की थी। सारे इंगलैंड में इस छोटी-सी रेलगाड़ी की चर्चा थी। व्यावसायिक दृष्टि से भी यह बड़ी सफल रही। डार्लिंगटन की खदानों के कोयले के लिए नये बाजार उपलब्ध हुए, उत्पादन में वृद्धि हुई, ज्यादा लोगों को रोजगार मिला, और दस साल के भीतर ही स्टाकटन के पास कोयले की लदान के लिए मिडलस्ब्रो एक नया समुद्री बन्दरगाह पैदा हो गया, जिसमे 6,000 व्यक्ति रहते थे। देश के भीतरी भागों के अन्य औद्योगिक क्षेत्र भी मांग करने लगे कि उन्हें रेल बिछाकर बन्दरगाहों से जोड़ दिया जाए। सवारी और माल गाड़ी के लिए लम्बी दूर की पहली लाइन बिछाने का चुनाव मैनचेस्टर और लिवरपूल के बीच ही हो सकता था, और इसके लिए जिस व्यक्ति को चुना जा सकता था, वह जार्ज स्टेफेंसन के अलावा

और कोई नही हो सकता था।

जैसे ही इन दो नगरो के व्यापारियो ने समुचित अधिनियम
पार्लियामेंट से आवेदन किया कि कठिनाइया शुरु हो गई। लि
सबसे बड़ा केन्द्र और मैनचेस्टर औद्योगिक बन्दरगाह था,
ब्रिजवाटर के ड्यूक द्वारा नियन्त्रित एक नहर से जुडे हुए थे।
साल पहले बनी थी और तब माल के यातायात के लिए पर्या
अब औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने के कारण यह अपर्याप्त मि
इसके अलावा, जाड़ो मे यह अक्सर जम जाती थी और मैनचेस्
बन्द हो जाना पड़ता था, क्योकि उन्हे रुई काफी मात्रा मे नही
लेकिन जब एक रेल-लाइन की योजना पेश की गयी तो ब्रिजवाट
उनके सहयोगियो ने परिवहन के इस नये साधन के विरुद्ध
आन्दोलन छेड दिया, और लोगो को इसका विरोध करने के
किया जाने लगा। इस नहर के—और ब्रिटेन की अन्य सभी न
भागीदारों को लगा कि नार्थम्बरलैंड के खलासी का बेटा उनके
लिए खतरा पैदा कर रहा है। एक ससदीय कमेटी इस पूरे प्रश्न
के लिए नियुक्त की गयी, और उसने स्टेफेंसन को जिरह के लिए
होने का आदेश दिया।

स्टेफेंसन लन्दन पहुचे और वेस्टमिस्टर के ससद भवन
जहा उनके जैसा मामूली आदमी शायद ही कभी प्रवेश पाता
ठेठ उत्तरी लहजा लगडी काठी, मजदूरो जैसे बड़े-बड़े और
मामूली ढग की सीधी-सादी पोशाक पहने। कमेटी के सामने पे
संस्मरण सुनाते हुए बाद मे उन्होने बताया, "जल्दी ही मैं क
से तुरन्त भाग निकलने का मौका ढूढने लगा।" कमेटी के सदस्य
अनुमानो और दावो का मजाक बनाया। रेल-गाडी सम्बन्धी उ
आज तक की सबसे वाहियात बात बताया गया और कहा
दौडते हुए रेल-इजन का मनुष्यो और पशुओ पर बहुत बुरा
इससे स्त्रियो के गर्भ गिर सकते है, गायें दूध देना बन्द कर देंगी
अडे नही देंगी। इजन से जो जहरीली हवा निकलेगी, उसके का
इलाके मे ढोर मर जाएगे और पेडो पर रहने वाली चिडिया न
इजन से उडने वाली चिनगारियो से लाइन के आसपास के मका

लगेंगे। देहाती इलाकों में डाकुओं की तादाद बढ़ जाएगी। इंजन के ब्वायलर फट जाएंगे और यात्री झुलसकर मर जाएंगे, या इससे पहले पागल ही हो जाएंगे, क्योंकि कोई भी आदमी दस मील से ज्यादा तेज रफ्तार सहन नहीं कर सकता···आदि-आदि।

स्टेफेंसन ने बड़े धीरज से काम लिया। वे जरा भी उत्तेजित नहीं हुए और एक-एक करके इन व्यर्थ की बातों का जवाब देते रहे। उन्होंने कहा कि जहां तक घोड़ों के भड़कने की बात है, कुछ घोड़े तो कूड़े की गाड़ी से ही भड़क जाते हैं। किलिंगवर्थ में (स्टाकटन-डार्लिंगटन लाइन तब तक बनकर तैयार नहीं हुई थी) गायों ने दूध देना या मुर्गियों ने अंडे देना बन्द नहीं किया है। कमेटी के एक सदस्य ने याद दिलाया कि एक बार शराब के नशे में एक खलासी ने भाप का दबाव इतना ज्यादा बढ़ जाने दिया कि ब्वायलर ही फट गया था। इसके उत्तर में स्टेफेंसन ने कहा, "इसके लिए आपको शराब को दोष देना चाहिए न कि भाप को।" यही नहीं, उनके बोलने के उत्तरी लहजे की ओर इशारा करके उनसे यह भी पूछा गया कि क्या तुम विदेशी हो?

कुछ सदस्यों का कहना था कि रेल-इंजन इतने भारी होते हैं कि उनका ठीक से हिलना-डुलना मुमकिन नहीं और अन्त में रेलों को सिर्फ घोड़ों से ही चलाया जाएगा। छह या सात मील प्रति घन्टे की रफ्तार बिलकुल असम्भव है। एक सदस्य ने कहा कि "मैं दिखा सकता हूं कि वह असल में तो छह मील की रफ्तार भी नहीं ला सकता। और, मैं तो नहर के जरिए इसका बड़े मजे में मुकाबला कर सकता हूं।"

स्टेफेंसन के लिए अब चुप रहना कठिन हो गया। उन्होंने दावा किया कि मेरा इंजन तो बारह मील की रफ्तार हासिल कर चुका है। लेकिन तभी उन्हें अपनी गलती का आभास हो गया, क्योंकि उनके मित्रों तक का विचार था कि यह एक खतरे की बात है और संसद को सभी तरह की रेलों के लिए 8 या 9 मील प्रति घण्टे की रफ्तार की सीमा बांध देनी चाहिए। विधेयक के विरोधियों के एक बैरिस्टर ने कहा था, "अब हमें इस रेल-इंजन रूपी दैत्य की मदद से बारह मील फी घन्टे की रफ्तार से भागना होगा और अपनी जान को उसी तरह खतरे में डालना पड़ेगा जैसे हम किसी तेज घोड़ा-गाड़ी के सबसे अगले घोड़े की नंगी पीठ पर सवारी कर रहे हों।"

एक दूसरे सदस्य ने पूछा, "और अगर कोई गाय भड़क कर इंजन के आगे लाइन पर आ जाए तब तो बड़ी भयानक बात होगी?"

"जी हां, बिलकुल। उसका तो कचूमर निकल जाएगा," स्टेफेंसन ने अपने

रद्द कर दिया।

आखिर इस प्रकार के अज्ञानपूर्ण और तीव्र विरोध के अभाव में विधेयक पेश करने वालों के सामने विधेयक को वापस ले लेने के अलावा और कोई चारा नहीं रह गया। स्टेफेंसन को अपने जीवन की सबसे बड़ी निराशा का सामना करना पड़ा। फिर भी भारी बाधाओं का मुकाबला करते हुए लाइन के सर्वेक्षण का काम तो पूरा कर ही लिया गया। सर्वेक्षण का पुनः काम स्टेफेंसन ने शुरू किया। नहर के मालिकों ने किसानों को इतना भड़का दिया था कि वे लोग निशानेबाजी का अभ्यास किया करते थे। रातों को और रविवार की सुबह को ही जब हर कोई चर्च गया होता था, सर्वेक्षण का काम आसानी से हो पाता था। एक बार तो चांदनी रात में स्टेफेंसन सर्वेक्षण के काम में लगे थे कि विरोधियों ने उनको पहचान लिया और वहां से खदेड़ दिया। बाद में उन्होंने एक चाल चलनी शुरू की—उन्होंने दूर एक ओर बन्दूकें दगवाईं और जब किसान उस दिशा में भागे तो उन्होंने इस ओर की जमीन का सर्वे कर डाला। उन्हें अपने धनी और शक्तिशाली विरोधियों की निगाहों को भी बीच में बचाकर आगे बढ़ना पड़ता था। सबसे बड़ी प्राकृतिक बाधा का सामना चैट मॉस में करना पड़ा, जहां बारह वर्ग मील का एक दलदल बीच में पड़ता था। लेकिन जान मेट्काफ ने पहले ही प्रयोग करके यह दिखा दिया था कि दलदल में भी सड़क को 'तैरती' हुई किस प्रकार बनाया जा सकता है कि वह नीचे न धंस सके। स्टेफेंसन ने भी वही तरीका इस्तेमाल करने का निश्चय किया।

इस बीच स्टाकटन-डार्लिंगटन रेल लाइन ठीक से काम करती रही थी और उसने सिद्ध कर दिया था कि कमेटी के सदस्यों द्वारा प्रकट की गयी आपत्तियां और उनके पूर्वाग्रह कितने गलत और मूर्खतापूर्ण थे। जब 1826 में दूसरा विधेयक पेश हुआ तो इस बार रेलगाड़ी के समर्थक बहुत से थे और वह कॉमन्स और लॉर्ड्स सभाओं में आसानी से पास हो गया। तुरन्त रेल बिछाने का काम शुरू हो गया। स्टेफेंसन ने अमरीका से अपने पुत्र रॉबर्ट को भी अपनी मदद के लिए बुला लिया। दलदल में पुल बांधने का काम रॉबर्ट को सौंपा गया। मजदूरों को अपने जूतों में बांधने के लिए तख्ते दिए गए ताकि वे दलदल में न धंस सकें। दलदल के किनारे की भराई की गयी और एक चौड़ा बांध तैयार किया गया। इसी बांध की ठोस सतह पर लाइन बिछा दी गयी।

जब तक चैट मॉस के दलदल में काम जारी रहा तब तक स्टेफेंसन ने अपना वह रेल-इंजन तैयार कर लिया जिससे वे लिवरपूल-मैनचेस्टर रेलवे का उद्घाटन करना चाहते थे। लेकिन सबको समान अवसर प्रदान करने की ब्रिटिश परम्परा

के अनुसार तय हुआ कि अन्य इंजन-निर्माताओं को भी मौका मिलना चाहिए। रेल-इंजनों के निर्माण का ठेका देने के लिए एक खुली प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

प्रतियोगिता में जिन चार इंजनों ने भाग लिया उनकी तुलना अपने आप में बड़ी दिलचस्प है। रेनहिल के पास लाइन का जो हिस्सा तैयार हो गया था, उस पर अक्तूबर 1829 में यह प्रतियोगिता इंजन दौड़ के रूप में सम्पन्न हुई। वास्तव में इस दौड़ में पांच इंजन भाग लेने वाले थे, लेकिन इनमें एक को शुरू में ही तब बाहर कर दिया गया, जब पता चला कि एक प्रतियोगी ने अपने इंजन में एक घोड़ा छिपा रखा है। लेकिन यह तथ्य कि स्टेफेंसन के अलावा उन दिनों रेल-इंजन तैयार करने वाले कुछ और लोग भी थे, इस बात का प्रमाण है कि इंजीनियरी की यह शाखा ब्रिटेन में खासी जम गयी थी और इंजीनियरों में यह विश्वास फैलता जा रहा था कि रेल का भविष्य खासा उज्ज्वल है।

प्रतियोगिता में भाग लेने की शर्तें बड़ी कड़ी थीं—इंजनों को सफ़र के दौरान अपने ही धुएं का उपयोग करना चाहिए, उनका वजन छह टन से ज्यादा नहीं होना चाहिए, उन्हें दस मील प्रति घन्टे या इससे अधिक की रफ्तार से बीस टन वजन खींचना चाहिए, भाप का दाब 50 पौंड प्रति वर्ग इंच से अधिक नहीं होना चाहिए, उनमें दो सुरक्षा वाल्व होने चाहिए जिनमें से एक स्वचालित होना चाहिए, प्रत्येक इंजन में छह पहिए होने चाहिए और उनमें स्प्रिंगें लगी होनी चाहिएं, और इंजन का मूल्य 550 पौंड से ज्यादा नहीं होना चाहिए। जो मशीन विजयी होगी उसे कम्पनी 500 पौंड में खरीद लेगी।

दो युवा इंजीनियर जॉन ब्रेथवेट और जॉन एरिकसन का रेल इंजन 'नॉवल्टी', टिमोथी हैकवर्थ का 'सानपारील', बस्टार्न का 'परसीवरेंस' और स्टेफेंसन का 'रॉकेट'—ये चार इंजन प्रतियोगिता में सम्मिलित हुए। उन हजारों दर्शकों के लिए जो इस इंजन दौड़ को देखने के लिए इकट्ठे हुए थे, ये इंजन खासे रहस्यमय यंत्र प्रतीत हुए होंगे। प्रतियोगियों ने भी सबसे पहले आपस में एक दूसरे की रचनाओं का निरीक्षण किया और उनकी बनावट की हर खूबी को ध्यान से देखा। एक इंजन में सीधा खड़ा सिलिंडर था तो दूसरे में बिलकुल पड़ा। 'रॉकेट' का सिलिंडर 45 अंश का कोण बनाये हुए था। एक इंजन में पानी की टंकी ऊपर थी तो दूसरे में पेंदे में थी या अलग से साथ-साथ चलती थी। 'नॉवल्टी' का ब्वायलर सीधा खड़ा था और उसका [illegible] ऊपर की ओर था। उसमें ईंधन को [illegible] के जरिए पहुंचाया जाता था। तीन इंजनों के ब्वायलरों में कोई ट्यूब नहीं थी [illegible] स्टेफेंसन के इंजन के पास ट्यूब थे। रेल कम्पनी के अध्यक्ष हेनरी
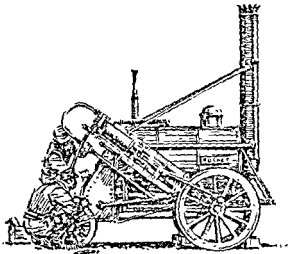
स्टेफेंसन का इंजन—'रॉकेट'

खूब विशेषज्ञ तो नहीं थे, लेकिन उन्होंने स्टेफेंसन को सुझाव दिया कि ब्वायलर के भीतर काफी सारे पतले ट्यूब लगाओ और भट्टी की गरम गैसों को उनके बीच में चिमनी तक ले जाओ। इससे ताप और पानी का सम्पर्क बढ़ जाएगा। ब्वायलर्स और ताप-एक्सचेंजरों में अब भी इसी सिद्धान्त का उपयोग किया जाता है। पिस्टनों से पहियों तक शक्ति का संचलन समान रखा गया था। इस दौड़ प्रतियोगिता में यही तय होना था कि इनमें से कौन-सी डिजाइन सबसे अच्छी है।

सबसे पहले 'रॉकेट' ने दौड़ लगाई। उसने साढ़े 13 मील प्रति घन्टे की रफ्तार प्राप्त की। इसके बाद 'नॉवल्टी' की बारी आई। उसने लगभग दुगनी रफ्तार से दौड़कर दर्शकों में सनसनी पैदा कर दी। लेकिन दूसरे दिन उसकी हालत खराब हो गयी। उसकी धौंकनी टूट गयी और उसे मरम्मत के लिए जाना पड़ा। इसी तरह 'सासपारील' का भी भाग्य ने साथ नहीं दिया—उसके ब्वायलर में गड़बड़ी पैदा हो गयी। 'परसीवरेंस' तो पटरी पर छह मील प्रति घन्टे की रफ्तार से ही रेंगता रहा।

अब 'रॉकेट' ने अपने जौहर दिखाने शुरू किए। उसने दो मील लम्बी लाइन को 13 टन का भार खींचते हुए 15 मील प्रति घन्टे की रफ्तार से 20 बार पार किया। और अन्त में तो उसने 29 मील प्रति घन्टा की रफ्तार से दौड़ लगाई। मरम्मत

के बाद भी 'नॉवल्टी' और 'सांसपारील' दोबारा टूट गए। रॉकेट की जीत हुई। स्टेफेंसन के इस आविष्कार ने अपनी जीत की खुशी में बिना भार लिए हुए 35 मील प्रति घन्टे की रफ्तार से दौड़ लगा कर दर्शकों को चकित कर दिया। दर्शकों में से बहुत से लोगों को लगा कि इंजन बेकाबू हो गया है और उसका ड्राइवर तेज हवा की मार से अपनी जान खो बैठा है। लेकिन जब सभापति मंच के ठीक सामने 'रॉकेट' आकर रुका और उसमें से ड्राईवर विजयन मुस्कराते हुए बाहर आया तो लोगों की खुशी की सीमा न रही।

इस बढ़िया इंजन और स्टेफेंसन द्वारा बनाए गए ऐसे ही सात दूसरे इंजनों से 15 सितम्बर 1830 को मैनचेस्टर, लिवरपूल, रेल लाइन का उद्घाटन हुआ। दुर्भाग्य से इस महान् अवसर पर ही एक रेल दुर्घटना हो गयी। लिवरपूल से पार्लियामेन्ट के सदस्य विलियम मुस्कीसन जो रेलवे के बहुत बड़े समर्थक थे। 'रॉकेट' से टकरा कर घायल हो गए। स्टेफेंसन ने उनको तुरन्त अपने एक इंजन से लिवरपूल पहुंचाया, लेकिन कुछ घन्टे बाद ही उनका देहान्त हो गया।

लेकिन एक दुर्घटना के बावजूद परिवहन के इस नए साधन की प्रगति धीमी नहीं हुई और स्टेफेंसन इगलैंड के सबसे लोकप्रिय व्यक्ति बन गए। यहां यह उल्लेखनीय है कि रेलवे के विकास के बिलकुल आरम्भ से ही यह विचार था कि इसके लिए सरकार के अधिकार में एक कम्पनी बनाई जाएगी, लेकिन पार्लियामेन्ट ने बाद में जोर दिया कि इजारेदारी से बचने के लिए छोटी-छोटी निजी कम्पनियां बनाई जाएं। केन्द्रीकृत नियन्त्रण की आवश्यकता को इसके एक शताब्दी बाद ही स्वीकार किया गया।

इस प्रकार निजी कम्पनियों के कारण रेलवे के पहले दस वर्षों में इस क्षेत्र मे सट्टेबाजी और वित्तीय साठ-गांठ का बाजार गरम रहा। उदाहरणार्थ, 1845 मे ब्रिटेन में कम-से-कम 620 कम्पनियां रेल-योजनाओं के सौदे कर रही थीं और हजारों आदमियों को अपने पैसों से हाथ धोना पड़ा। इसी तरह फ्रांस में 1846 में इक्कीस में से उन्नीस रेल कम्पनियों का दीवाला निकल गया। जर्मनी में जहां 1835 में न्यूरेम्बर्ग के समीप पहली रेल चलाई गयी थी और इसके लिए स्टेफेंसन के इंजन और एक अंग्रेज ड्राइवर की मदद ली गयी थी, वहां एक बड़ी रेल कम्पनी द्वारा की गयी धांधली के कारण फ्रेडरिख लिस्ट नामक उसी व्यक्ति को आत्म-हत्या कर लेनी पड़ी जिसने रेलवे को प्रचलित करने के लिए सबसे अधिक काम किया था।

जार्ज स्टेफेंसन ने इस धींगामुश्ती को रोकने की भरसक कोशिश की, लेकिन वे रेलवे की लोकप्रियता के नाम पर बढ़ते हुए पागलपन को नहीं रोक सके।

जल्दी अपना रुपया निकाल लें वरना उनका सारा धन डूब

र्षेत्र ही नयी रेल-लाइनों को शुरू करने के लिए स्टेफेंसन के इजनों
लगा और 1848 मे उनकी मृत्यु के बहुत समय बाद तक ब्रिटेन
सर्वोत्तम माने जाते रहे। स्टेफेंसन के 4 फुट 8½ इंच के मानक
काश देशो मे अपना लिया गया।

र विकास मे उन्नीसवी सदी के पूरे काल मे रेलवे ने बड़ी
ा अदा की। अमरीका के उद्योग और व्यवसाय-प्रधान पूर्वी क्षेत्र,
ाले दक्षिणी क्षेत्र, कृषि-प्रधान पश्चिमी मध्य क्षेत्र तथा अल्प-
मी समुद्रतट के बीच 1830 तक सम्पर्क का कोई सतोषजनक
। पहली रेल-लाइन 1831 मे बाल्टीमोर से ओहाइयो के लिए
840 में बोस्टन को अल्बानी से और न्यूयार्क को बफैलो से जोड़ा
र रेल-इंजन स्टेफेंसन के कारखाने से ही मंगाए जाते थे और
यात भी इंगलैंड से किया जाता था। गृहयुद्ध के बाद ही अमरीकी
विकास शुरू हुआ। 1864 मे देश के आर-पार बिछाई जाने वाली
रीकन लाइन पर दोनो ओर के सिरों से काम शुरू हुआ और जब
के दोनो सिरे आकर ऊटा मे मिले, तो इस नाटकीय अवसर का
जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा।

के लिए रेल कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई इसका प्रमाण यह है कि
सम्बन्धी अनेक सुधारो और आविष्कारों ने जन्म लिया। 1859
र पुलमैन ने 'स्लीपिंग कार' या शायिका का आविष्कार किया।
वेस्टिंगहाउस ने पहली बार रेलगाड़ी को रोकने के लिए ब्रेक पर
का प्रयोग किया। यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण आविष्कार था, क्योंकि
र से चलती हुई गाड़ी को गार्ड द्वारा हाथ से लगाए जाने वाले
अब बहुत खतरनाक होता जा रहा था। 1871 में स्वचालित
क का और 1874 मे ब्लाक सिगनल प्रणाली का आविष्कार
पहला प्रशीतक माल डिब्बा चालू हुआ, जिसके कारण खराब
खाद्यान्न को देश भर मे पहुचाया जा सकता था। 1900 मे सवारी
होने के लिए पूरे इस्पात से बने डिब्बों का चलन शुरू हुआ जिससे
री दुर्घटनाओ मे जान और माल के नष्ट होने का खतरा कम हो

गया। आज अमरीका में संसार के किसी भी देश की तुलना में सबसे ज़्यादा मील लम्बी रेलें बिछी हुई हैं—लगभग ढाई लाख मील लम्बी। ब्रिटेन और फ्रांस की अपेक्षा दस गुना ज़्यादा और सोवियत संघ से तीन गुना ज़्यादा, यद्यपि सोवियत संघ का क्षेत्रफल अमरीका का लगभग तीन गुना है।

पिछली सदी के उत्तरार्ध में संसार में रेलों का विकास इतनी तेज़ी से हो सका, इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पटरियों और डिब्बों के लिए सस्ते और अधिक मज़बूत इस्पात को तैयार करने की नयी प्रणालियों का विकास हुआ। इन प्रणालियों के बारे में हम चौथे अध्याय में पढ़ेंगे।

ऐसी प्राकृतिक बाधाएँ अब थोड़ी ही रह गयी होंगी जिन पर अब तक रेलवे ने विजय न प्राप्त की हो। हम उन बड़े पुलों के बारे में पढ़ चुके हैं जिनकी सहायता से रेलें किसी महाद्वीप के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंच सकती हैं। ऐसे बड़े-बड़े रेल के पुल बन चुके हैं जिनके कारण पानी के लम्बे-चौड़े हिस्सों को रेलें आसानी से पार कर लेती हैं। जैसे ग्रेट साल्ट लेक पर बना 20 मील लम्बा पुल या फ्लोरिडा का कीज के वायाडक्ट। इन स्थानों पर मामूली ढंग के पुल बनाना सम्भव नहीं था। ट्रांस साइबेरियन रेलवे लाइन पृथ्वी की परिधि के एक चौथाई से भी अधिक लम्बे भू-भाग को पार करके यूरोपीय रूस को प्रशान्त महासागर के किनारे से जोड़ती है। इसी तरह अफ्रीका के घने जंगलों, दक्षिणी अमरीका के पम्पा मैदानों और आस्ट्रेलिया के जंगली इलाकों को रेलवे ने पार कर लिया है।

सम्भवतः सुरंगें आधुनिक सड़क-परिवहन के क्षेत्र में इंजीनियरी का सबसे आश्चर्यजनक करिश्मा मानी जा सकती हैं। जल-व्यवस्था इंजीनियरी के सबसे बड़े जानकार रामनों ने पानी की सप्लाई और निकासी के लिए अनेक सुरंगें बनाई थीं। इनमें सालिवियानो पर्वत के बीच से निकाली गयी साढ़े तीन मील लम्बी सुरंग भी थी, जो फ्यूचीनो झील के पानी की निकासी के काम आती थी। उन्होंने सड़क के लिए भी कई सुरंगें निकाली थीं, जिनमें से एक नेपल्स के पास की जो नगर को उसके उपनगर वागनोली से जोड़ती थी और दूसरी फ्लामीनिया मार्ग पर थी। जब हम यह सोचते हैं कि उस समय आधुनिक यान्त्रिक साधनों का ही नहीं, विस्फोटकों का भी अभाव था, तो हम इन महान उपलब्धियों को देखकर चकित रह जाते हैं।

सुरंग-निर्माण का आधुनिक युग 1707 में स्विट्ज़रलैंड में शुरू हुआ जब वहां सेंट गोटहार्ड पर 'उर्नर लोच' का निर्माण हुआ। यह बारूद के विस्फोट से चट्टान को खोखला करके बनाई गयी 200 फुट लम्बी सुरंग है। इसके 100 साल

ऊपर : पनामा नहर

नीचे : स्वेज नहर
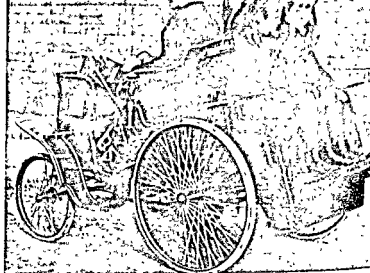
एक बॅंजकार, जो मानहाइम से एक अंग्रेज चालक के पास भेजी गयी थी (1898
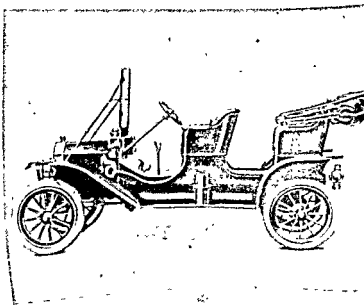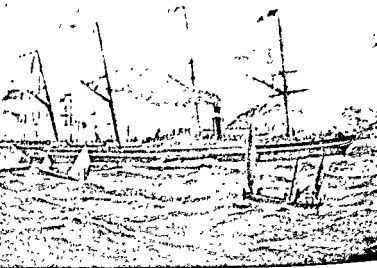
ऊपर : आई० के० ब्रूनेल द्वारा 1837 में निर्मित 'दि ग्रेट वेस्टर्न' जहाज न्यूयार्क की पहली यात्रा पर।

नीचे : 'एस० एस० फ्रांसिस स्मिथ' के पिछले भाग का एक माडल, जिसमें दो मोड़ वाला पेंच स्क्रू लगा है। (1836)
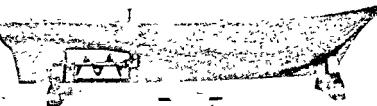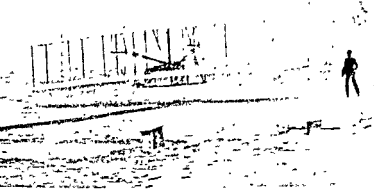
ऊपर : हवा से भारी यान की पहली उड़ान। आर्विल राइट यान पर लेटा हुआ है और विल्बर उसके पीछे दौड़ रहा है (किटी हॉक, उत्तरी कैरोलिना 17 दिसम्बर 1903)।

नीचे : आंग्ल—फ्रेंच पराध्वनिक जेट विमान 'कोन्कोर्ड'
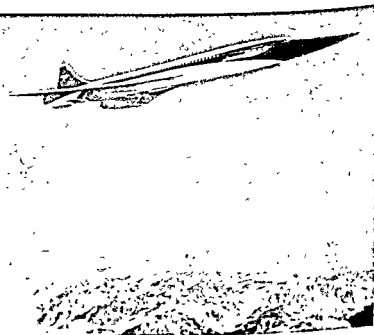
बाद फ्रांसीसियों ने ट्रोकोई में बालू की तहों के बीच से सेंट क्वेंटीन नहर बनाई। स्टेफेंसन ने मैनचेस्टर से आने वाली अपनी रेलवे लाइन पर लिवरपूल की ओर पहली रेल सुरंग बनाई थी जिसमें गैस की बत्तियां भी लगाई गई थीं। परन्तु सुरंग-निर्माण का सबसे आश्चर्यजनक नमूना 19वीं शताब्दी के आरम्भ में सर मार्क आइज़मबार्ड ब्रूनेल द्वारा टेम्स नदी के नीचे से निकाली गई सुरंग थी। इस पर 1825 में काम शुरू हुआ और 1841 में अनेक कठिनाइयों का सामना करने के बाद पूरा हो सका। यह नदियों के नीचे निकाली हुई सुरंगों में सबसे पहली थी। 1500 फुट लम्बी और 13 फुट चौड़ी यह सुरंग अपने युग का एक महान आश्चर्य सिद्ध हुई। इसके निर्माण में जिन तकनीकों का उपयोग हुआ है उनमें से अधिकांश का आविष्कार ब्रूनेल को स्वयं करना पड़ा था। ग्यारह बार नदी सुरंग तोड़कर घुस आई। दो बार तो छत फोड़कर ही नदी का पानी निकल आया। अगर ब्रूनेल की जगह कोई दूसरा इंजीनियर होता तो उसने कभी का काम बन्द कर दिया होता, लेकिन यह ब्रूनेल की तकनीकी प्रतिभा और साहस का प्रमाण था कि सुरंग पूरी हो सकी।

1850 के बाद स्विट्ज़रलैंड के निवासियों ने सुरंग-निर्माण की कुछ बड़ी साहसिक परियोजनाएं आरम्भ कीं, क्योंकि इनके बिना वे रेलवे से लाभ नहीं उठा सकते थे, जो अब यूरोप के देशों को एक दूसरे के साथ जोड़ने का काम कर रही थी। इनमें से पहली मोंटकेनिस को काटकर बनाई गई है। लगभग 8 मील लम्बी यह सुरंग 1857 में बननी शुरू हुई और 14 साल में बनकर तैयार हुई। इसमें पहली बार चट्टान में छेद करने के लिए संपीडित वायु का प्रयोग किया गया। एक अमरीकी पत्रिका में इसी विधि का वर्णन पढ़कर जॉर्ज वेस्टिंग-हाउस को संपीडित वायु के ब्रेक का विचार सूझा था। यह सुरंग ल्योन्स और तूरिन को जोड़ती है।

मोंटकेनिस सुरंग के पूरा होने के साल भर बाद मिलान से ज्यूरिख जाने वाली रेलवे लाइन के लिए सुरंग पर काम शुरू हुआ। तब तक हाल में ही डाइनामाइट का आविष्कार हो चुका था। इंजीनियरों ने इससे लाभ उठाया, लेकिन फिर भी 9 मील से कुछ अधिक लम्बी इस सुरंग को बनने में 9 साल का समय लगा। इसके बाद आस्ट्रिया में 1880 से 1884 के बीच लगभग 6 मील लम्बी अर्लबर्ग सुरंग बनकर तैयार हुई, जो इन्सब्रुक को लेक कॉन्सटेंस से जोड़ती है।

1898-1905 के बीच सात साल में संसार की सबसे लंबी सुरंग बनकर तैयार हुई। यह जेनो-आजेनेवा रेलवे पर सिम्पलन पर्वतमाला के बीच से निकाली गई है। यह 12 मील से अधिक लम्बी है और इसके ऊपर 6400 फुट

कारण सुरंग की दीवार का तापमान 100° फा० तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार 1965 में मानव का एक और स्वप्न पूरा हुआ जिसकी कल्पना वह तब से करता चला आ रहा था, जब हनीबाल ने आल्प्स पर्वत पार करने का प्रयास किया था। यह सुरंग यूरोप के सबसे ऊँचे पर्वत मोन ब्लांक के बीच से होकर निकली है और इसके निर्माण का श्रेय फ्रांसीसी और इतालवी इंजीनियरों के संयुक्त प्रयास को है। सात मील से अधिक लम्बी इस सुरंग में से प्रति वर्ष 3,00 000 गाड़ियाँ गुजरती हैं और लगभग दस लाख यात्रियों को ढोती हैं।

जैसा कि आमतौर से सुरंग निर्माण में होता है मोन ब्लांक की सुरंग बनाते समय पर्वत को दोनों ओर से साथ-साथ काटा गया। जब पहाड़ की 6,000 फुट ऊँची चोटी के नीचे फ्रांसीसी और इतालवी दस्ते बीच में आकर मिले तो उनके बीच केवल दो इंच का फर्क आया था। जब ज्यामितीविदों ने सभी मोड़ों और उभारों को ध्यान में रखते हुए कोणों का हिसाब लगा लिया तो विस्फोट करने का काम शुरू हुआ और चट्टान काटने के बरमे चालू हो गए। धुएं से बचने के लिए बिजली से चलने वाले बरमों का ही प्रयोग किया गया, जिन्हें तीन-स्तरीय 'जम्बो' कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक में पन्द्रह हैमर ड्रिल लगे थे, जो सुरंग की पूरी आड़ी काट पर एक साथ आघात करते थे। बरमों के पीछे से पत्थरों को हटाने का काम भी यन्त्रों के जरिए ही किया गया। तीन पालियों में चौबीसों घण्टे काम जारी रहता था। प्रतिमास लगभग 800 फुट सुरंग आगे बढ़ती थी। बरमों और पत्थर हटाने वाली मशीनी बाल्टियों के कुछ सौ गज पीछे एक बहुत बड़ा 'कंक्रीट-मिक्सर' चला करता था, जो कंक्रीट की दो फुट मोटी तह बिछाता चलता था। इस सुरंग में वास्तव में एक के ऊपर एक दो सुरंगे हैं। ऊपर वाली सुरंग में तो 23 फुट चौड़ी सड़क है और नीचे वाली सुरंग हवा के जाने-आने तथा नालियों और बिजली के मोटे तारों के लिए हैं।

इससे भी आधा मील ज्यादा लम्बी दूसरी सुरंग आल्प्स पर्वत के मर्कन्टूर गिरिपिंड के नीचे से जाती है और फ्रांसीसी, इतालवी सीमा के पास नीस और तूरिन को जोड़ती है। इसका काम 1964 में शुरू हुआ और यह पाच साल में बनकर तैयार हुई। इसमें प्रति घटे 800 गाड़ियां निकल सकती हैं।

लेकिन आल्प्स पर्वत में बनी ये सुरंगें तब संसार की सबसे महान और आश्चर्यजनक सुरंगें नहीं रह जाएगी, जब ब्रिटेन और फ्रांस के बीच इंगलिश चैनल के नीचे सुरंग निकालने की पुरानी कल्पना साकार हो जाएगी। यह कल्पना नेपोलियन के समय से चली आ रही है। नेपोलियन का विचार था कि

भी यह बड़ी गम्भीर समस्या हो सकती है।

संसार के अधिकांश भागों में रेलवे लाइनों का जाल बिछ गया और इसके साथ ही भाप के रेल-इंजन का भी खूब विकास हुआ। स्टेफेंसन द्वारा निर्मित छोटे से 'रॉकेट' से लेकर सवारी गाड़ी के लिए बने अब तक के उन सबसे शक्तिशाली रेल-इंजन तक की कहानी बड़ी रोचक है, जिसे अमरीका की नॉरफोक और वेस्टर्न रेलरोड कम्पनी ने बनाया था और जिसकी कुल लम्बाई 66 फुट 11 इंच, वजन 442 टन और कर्षण शक्ति 1,50,000 पौंड थी। इससे भी ज्यादा ताकत का इंजन अमरीकन लोकोमोटिव कम्पनी ने दोनों विश्व युद्धों के बीच के काल में बनाया था। इसका नाम 'बर्जीनियन' था। विशेष रूप से मालगाड़ी के उपयोग के लिए बनाया गया यह इंजन 71 फुट लम्बा था और इसका वजन 450 टन था। रेल-इंजनों की डिजाइन में भाप-टरबाइन का भी अधिक से अधिक उपयोग हुआ है, विशेष रूप से ब्रिटेन और जर्मनी में। लम्बी यात्रा के लिए इस प्रकार का इंजन उपयोगी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इसमें 50 प्रतिशत ईंधन की बचत होती है, लेकिन परम्परागत इंजन की अपेक्षा यह धीमी रफ्तार से चलता है और आरम्भ में इसमें ज्यादा भाप की जरूरत होती है। लेकिन एक शताब्दी से भी अधिक तक संतोषजनक सेवा करने के बाद परिवहन के क्षेत्र से भाप-इंजन विदा लेने लगा और उसकी जगह बिजली की मोटर से चलने वाले इंजन का प्रचलन बढ़ गया। बिजली से चलने वाली पहली रेलगाड़ी का जन्म 1881 में हुआ था, जब जर्मन इंजीनियर और उद्योगपति वेर्नर वॉन साइमेन्स ने बर्लिन के एक उपनगर में अपनी पहली विद्युत्-चालित ट्रामवे का उद्घाटन किया था। इसकी एक पट्टी में बिजली की धारा प्रवाहित होती थी। बाद में साइमेन्स को लगा कि यह तरीका खतरनाक है और उसने ऊपर तने हुए बिजली के तारों से बिजली लेने की व्यवस्था शुरू की।

इसके बाद पहले तो ट्रामवे और फिर ट्राली बसों का प्रचलन बढ़ता गया, और ये नगरों में परिवहन का मुख्य साधन बन गयीं। इसके बाद बिजली की भूमिगत रेलें और खम्भों पर दौड़ने वाली रेलें बनीं, और अन्त में लम्बी यात्राओं के लिए भी बिजली की रेलों का व्यापक रूप से उपयोग होने लगा। 1900 के आसपास घोड़ों से खींची जाने वाली ट्राम गाड़ियों की जगह बिजली की ट्राम ही शहरों में परिवहन की समस्या का सर्वोत्तम हल मानी जाने लगी थीं। परन्तु जब प्रथम विश्वयुद्ध के बाद मोटर गाड़ियों का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया तो ट्रामगाड़ियों की उपयोगिता कम होने लगी और नागरिक परिवहन के रूप

में उन्हें एक पिछड़ा हुआ साधन माना जाने लगा। शहरों के घने इलाकों और सकरी सड़कों में इनकी वजह से दिक्कत महसूस की जाने लगी। कुछ नगरों में इनकी जगह ट्राली बसें चलाई गईं, क्योंकि उनके लिए पटरियों की जरूरत नहीं होती और वे खम्भों पर लगे तारों से बिजली प्राप्त करती है। लेकिन नगर परिवहन के लिए आमतौर से ट्रामवे की जगह बसों को ही पसन्द किया जाने लगा।

बड़े-बड़े महानगरों में जमीन के नीचे या ऊपर खम्भों पर चलने वाली रेलगाडियों को ही नागरिक परिवहन के लिए सर्वोत्तम माना गया है। लन्दन में ऐसी रेलों की ससार में सबसे अच्छी व्यवस्था है। भाप-इंजन से चलने वाली सबसे पहली भूमिगत रेलगाडी 1863 में चली। यह एक गहरी खदक में चलती थी और खदक को ऊपर छत से ढक दिया गया था। इसके बाद लंदन की 'टावर सब-वे' 1870 में चली। यह ससार की सबसे पहली 'ट्यूब' रेल थी और भाप-इंजन से ही चलती थी। 'ट्यूब' व्यवस्था में जमीन के नीचे इस्पात के दो सिलिण्डर साथ-साथ बिछाए जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक रेल-लाइन और दो बिजली की पट्टियां होती हैं। लन्दन के लिए इसी प्रकार की भूमिगत रेल ठीक मानी गई, क्योंकि उसे जमीन में 100 फुट नीचे बनाना पड़ता था। बर्लिन और पेरिस की मिट्टी अधिक सख्त होती है, इसलिए वहां भूमिगत रेल को सड़क की सतह से कुछ फुट नीचे जमीन में बनाने से ही काम चल सकता है। बिजली की सप्लाई के लिए बिजली घर इस सदी के आरंभ के पहले से ही काम करने लगे थे। बिजली से चलने वाली पहली ट्यूब रेल 1890 में शुरू हुई, और उसके बाद से तो लन्दन के नीचे धीरे-धीरे ट्यूब रेलों का जाल-सा बिछता चला गया। लेकिन 1907 से 1968 तक इसमें कोई नयी शाखा नहीं जोड़ी गई। 1968 में विक्टोरिया लाइन का पहला विभाग चालू किया गया, जो लन्दन के केन्द्र में ट्यूब लाइनों को जोड़ने वाली एक जरूरी कड़ी सिद्ध हुई। यह पश्चिमी यूरोप में पहली स्वयं नियंत्रित भूमिगत लाइन है। कुछ समय बाद ट्यूब रेल की सम्पूर्ण प्रणाली स्वचालित और ड्राइवर—रहित हो जाएगी।

न्यूयार्क की पहली 'सब-वे' या भूमिगत रेल 1904 में शुरू हुई। इसके कुल 475 स्टेशन लन्दन के ऐसे स्टेशनों की अपेक्षा कम दूरियों पर बने हैं। इसे ज्यादा बढ़िया और आरामदेह बनाने के लिए 1950 के बाद से बराबर उन्नत और आधुनिक बनाया जा रहा है। पेरिस की भूमिगत रेल 'मित्रो' प्रथम विश्व-युद्ध से लगभग दस साल पहले चालू हुई थी, लेकिन आधुनिकीकरण की दृष्टि से उसमें कोई फेरफार नहीं किया गया है। बर्लिन, ग्लासगो, मैड्रिड, टोकियो,

ब्यूनोस आयर्स तथा संसार के अन्य अनेक बड़े नगरों में काफ़ी दिनों से भूमिगत रेलें चल रही है। इनमें सबसे बाद में बनी है मास्को की भूमिगत रेल 'मिट्रो' जो 1932 में शुरू हुई और टुकड़े-टुकड़े में 1950 तक पूरी हुई। यह बहुत ही बढ़िया और शायद सबसे तेज़ चलने वाली भूमिगत रेल है और इसमें अनेक आधुनिक तकनीकी विशेषताएं हैं। इसके स्टेशनों को पुराने शानदार ढंग से सजाया गया है जो आधुनिक दर्शकों को विक्टोरियन शैली के प्रतीत होते हैं। 1970 के दशक में जर्मनी के म्यूनिख और फ्रांकफुर्ट नगरों में भी भूमिगत रेलों के शुरू होने की आशा है, जो ज़्यादातर स्वचलित ही होंगी।

लम्बी दूर की मेन लाइनों पर बिजली की रेलें चालू करने का काम आरम्भ में सामान्य गति से उन्हीं देशों में शुरू हुआ। जहां जल-विद्युत् शक्ति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी, जैसे स्विट्जरलैंड, दक्षिणी जर्मनी और अमरीका। बिजली की रेलों की इंजीनियर लोग एक लम्बे समय से कल्पना कर रहे थे। लेकिन उन्नीसवीं सदी के मध्य में बैटरी से चलने वाले रेल इंजनों का प्रयोग असफल ही सिद्ध हुआ। भारी वजन को खींचने के लिए बहुत शक्ति की आवश्यकता थी, और बैटरी की स्टोरेज क्षमता बहुत सीमित थी और आज भी सीमित ही होती है। विद्युत्-कर्षण के लाभ इतने प्रत्यक्ष थे कि बिजली की व्यवस्था करने में आने वाला खर्च उचित प्रतीत होता था।

रेल की पटरियों के ऊपर टंगे हुए तारों में बिजली घर से उच्च-वोल्टता की विद्युत् धारा को प्रवाहित करना और उसे इंजनों के विद्युत्-मोटर में भेजना भाप की कर्षण शक्ति का प्रयोग करने की बजाय कहीं अधिक लाभप्रद होता है। हज़ारों रेल-इंजनों के ब्वायलर में बार-बार शक्ति उत्पन्न करने की अपेक्षा कुछ बड़े बिजली घर कायम करके शक्ति-उत्पन्न के कार्य को केन्द्रीकृत करने से संचालन का व्यय भी कम बैठता है। इसके अलावा, घटिया कोयला, जल-शक्ति, प्राकृतिक गैस और परमाणु ऊर्जा जैसे विभिन्न ईंधनों और ऊर्जा के स्रोतों का भी इस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। रेल के लिए बिजली का इंजन भाप के इंजन की अपेक्षा अधिक सस्ता पड़ता है, क्योंकि इसे अपना ईंधन और पानी नहीं ढोना पड़ता है। वह जब काम करता है केवल तभी ऊर्जा का उपयोग करता है, जबकि भाप-इंजन के लिए पहले भाप तैयार करनी पड़ती है, तथा जब इंजन बीच में स्टेशनों पर रुकता है या यात्रा के अन्त में खड़ा होता है तो ईंधन व्यर्थ नष्ट होता है। बिजली के रेल-इंजन में भंडार जमा नहीं करना पड़ता, और उसके नियन्त्रक यन्त्रों को चलाना सरल होता है। इसके अलावा, बिजली के यन्त्रों में स्वचालित और सुरक्षात्मक व्यवस्था करना भी आसान होता

है। इसमें बार-बार ईंधन भरने में समय नष्ट नहीं करना पड़ता, और इस तरह यह उतने ही समय में अधिक यात्रा करता है।

मुसाफिर को भी इंजन के धुएं और कालिख का सामना नहीं करना पड़ता। भाप इंजन के धुएं के क्षारीय तत्वों के कारण आसपास के भवनों को नुकसान पहुंचता है, और चिमनी से निकलने वाली चिनगारियों से आग लगने का खतरा भी बना रहता है, जबकि बिजली के इंजन से ऐसा कोई खतरा नहीं होता। सुरंगों के लिए भाप-इंजनों की अपेक्षा बिजली के इंजन कहीं ज्यादा अच्छे होते हैं, क्योंकि धुएं के अभाव में सुरंग की हवा साफ रहती है। ज्यादा चढ़ाव या उतार वाली लाइनों पर भाप की बजाए बिजली का खिंचाव ज्यादा अच्छा रहता है। इस प्रकार ज्यादा ठहराव वाली लाइनों पर भी बिजली का इंजन ज्यादा अच्छा काम करता है, क्योंकि यह जल्दी रफ्तार पकड़ सकता है।

रेलों में विद्युतन की दो मुख्य प्रणालियां प्रचलित हैं—एक में तो एकदिश धारा या डी० सी० करेंट का 500 से 3,000 वोल्टता पर उपयोग होता है, और दूसरी में 25,000 वोल्ट तक की एक फेज की प्रत्यावर्ती धारा या ए० सी० करेंट का उपयोग होता है। इसमें केवल एक ही प्रमुख अपवाद है उत्तर इतावली रेलवे जो तीन फेज की 3,600 वोल्ट की प्रणाली का उपयोग करती है। उप-नगरीय लाइनों के लिए आमतौर से 600–1,200 वोल्ट डी० सी० का उपयोग किया जाता है, और इंजनों में 150 से 300 अश्वशक्ति की 2 से 4 तक मोटरों की व्यवस्था रहती है। बिजली के इंजनों में 1,200 वोल्ट तक की करेंट सम्पर्क-रेल के जरिये सप्लाई की जा सकती है, लेकिन इससे अधिक के लिए टंगे हुए तारों वाली प्रणाली ही ज्यादा अच्छी और सुरक्षापूर्ण होती है। इंजन की छत पर एक धनुषाकार सग्राहक लगा होता है जो करेंट को इंजन की मोटर में पहुंचाता है।

इसके लिए बिजलीघरों में ए० सी० करेंट की सप्लाई होती है, क्योंकि लम्बी दूरी पर डी० सी० करेंट की बहुत-सी ऊर्जा रास्ते में ही नष्ट हो जाती है। परन्तु रेल-इंजनों के मोटर आमतौर पर डी० सी० से चलते हैं। इस शताब्दी के आरम्भ तक बिजलीघर से प्राप्त ए० सी० को रेल-इंजनों के लिए डी० सी० में बदलने का एक मात्र तरीका यह था कि ए० सी० करेंट से इंजन में डी० सी० का एक जनरेटर चलाया जाता था। बाद में, पारदचाप एकदिशकारी या मर्करी-आर्क रेक्टिफायर का प्रयोग होने लगा, लेकिन इसके लिए शीशे का आवरण या पानी से ठंडा होने वाला लोहे की चादर वाला टैंक आवश्यक होता था, जिसमें यह चलाया जा सकता था। इससे विद्युत्-धारा केवल एक दिशा में ही प्रवाहित हो पाती है। इसकी बजाए सम्पर्क—एकदिशकारी ह्रास का आविष्कार है, जो

प्रत्येक चक्र पर धातु के सम्पर्कों को बंद करना और खोलना है। परन्तु सबसे बढ़िया है, आधुनिक ट्रांसफार्मर जो जर्मेनियम का एकदिशकारी है और ट्रांजिस्टर का ही एक संबंधी है। इसका विभिन्न वोल्टताओं और किलोवाटों पर उपयोग किया जा सकता है, और यह एक सरल छोटा और मजबूत यंत्र है जिसे अतिरिक्त प्रशीतन की आवश्यकता नहीं होती। एक अपवाद है यूस्टन-लिवरपूल लाइन, जिस पर 25,000 वोल्ट ए० सी० के इंजन चलते हैं। इनमें से पहला इंजन मैनचेस्टर और क्रयू के बीच 1960 में चालू हुआ था। 90 मील प्रतिघंटा की रफ्तार और 3,300 अश्वशक्ति का यह इंजन ब्रिटेन का सबसे शक्तिशाली इंजन है। ए० सी० प्रणाली के उपयोग के कारण अब ट्रांसफार्मरों की आवश्यकता नहीं रह गई है, और लाइन के किनारे पूरक स्टेशन की जरूरत में भी काफी कमी हो गई है।

इस पुस्तक के लिखने तक संसार मे रेल की रफ्तार का रिकॉर्ड बिजली से चलने वाले दो फ्रांसीसी इंजनों ने हासिल किया था, जिन्होंने 1955 में तीन डिब्बों को 250.6 मील प्रति घंटा की रफ्तार से खींचा था। यह रिकॉर्ड बोर्दो और दाक्स के बीच 1,005 वोल्ट डी० सी० लाइन पर हासिल किया गया था। सबसे तेज रफ्तार भाप-इंजनों में 130 मील प्रति घंटे से अधिक की रफ्तार नहीं प्राप्त की है।

सिद्धान्ततः एक लम्बे समय से यह मान लिया गया है कि अब भाप इंजन के दिन लद चुके हैं। लेकिन ब्रिटेन के समान कुछ देशों मे, जिनके यहां जल-विद्युत् शक्ति एक सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है, लेकिन जिनके यहां कोयला पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है, बिजली की रेलों को चलाना 1950 तक बहुत उपयोगी नही माना गया, जबकि कुछ विशेषज्ञों और सरकारी समितियों ने एकमत से इसका समर्थन नहीं किया कि बिजली का उपयोग सस्ता, अधिक कारगर और स्वच्छता की दृष्टि से भी अधिक अच्छा है। परमाणविक ऊर्जा के आविष्कार के बाद ही ब्रिटेन की समस्त मुख्य लाइनों का विद्युतन किया जा सका, क्योंकि यह माना गया कि परमाणु ऊर्जा से अधिक लम्बे समय तक पर्याप्त मात्रा में और सस्ती बिजली प्राप्त की जा सकेगी। ब्रिटेन में 1955 के बाद से नये भाप-इंजनों का चालू किया जाना बन्द कर दिया गया।

हम डीजल से चलने वाले इजनों के बारे में बाद में विचार करेंगे, जिन्होंने रेलों के आधुनिकीकरण मे विशेष भूमिका अदा की है। यहां इतना उल्लेख ही पर्याप्त है कि 'शुद्ध' डीजल इंजन कम दूरी के लिए और शंटिंग के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। डीजल-विद्युत इंजन उन लाइनों के लिए उपयोगी है, जहां

3
सड़क पर चलने वाली मशीनें

1813 में एक दिन जर्मनी के एक नगर मानहाइम की सड़कों पर एक नौजवान एक विचित्र वाहन पर बैठा दौड़ा चला जा रहा था। यह दो पहियों की एक गाड़ी थी, जिसके लकड़ी के ढांचे में दो पहिए एक सीध में आगे-पीछे लगे थे और बीच में बनी एक छोटी-सी गद्दी पर वह आदमी बैठा था। वह बैठे-बैठे ही अपने पैरों से बारी-बारी से धक्का मारकर गाड़ी को आगे धकेलता था। गाड़ी आगे सरकने का खेल खेलने के स्केटर की भांति ही चलती थी, उसने अपनी बांहें लोहे की दो छड़ों पर टिका रखी थीं और उसकी रफ्तार किसी घोड़ागाड़ी की रफ्तार से कुछ ही कम थी और हाथों में लकड़ी की एक पट्टी थाम रखी थी, जो अगले पहिए से जुड़ी थी और जिसकी सहायता से वह पहिए को दाएं-बाएं मोड़ सकता था।

सड़क में आवारा बच्चे उसके पीछे दौड़ रहे थे और राहगीर उसे देखकर अपनी हंसी नहीं रोक पा रहे थे। जंगलात के महकमे की वर्दी का हरा फ्रॉक-कोट पहने और ऊंचा टोप लगाए वह व्यक्ति अपनी विचित्र गाड़ी पर बैठा पत्थर की पक्की सड़क पर उछलता और लुढ़कता हुआ वास्तव में बड़ा हास्यास्पद लग रहा था। बैरन कार्ल फ्रीडरिश क्रिश्चियन लुडविग ड्राइस फान सोरब्रौन के लम्बे नाम वाला यह 28 वर्षीय धनी युवक निश्चय ही कुछ सनकी था। वह एक उच्च सरकारी अधिकारी का पुत्र था और एक अधिकारी या सिविल अफसर के रूप में उसका भविष्य सुरक्षित था। उसने सिविल अफसर बनना पसन्द किया। लेकिन नित नयी चीजों का आविष्कार करने के लिए वह तड़पता रहता था। वह वास्तव में एक जन्मजात तकनीशियन था, लेकिन उच्च-वर्गीय आचार-व्यवहार के कारण उसके लिए मशीनी कामकाज सीखना सम्भव नहीं था। निराशा के कारण वह चिड़चिड़ा और ज़िद्दी हो गया था।

अपने इस आविष्कार के प्रदर्शन के कारण, जिसे वह 'दौड़ने की मशीन' कहता था, उसे उस सरकारी पद से हाथ धोना पड़ा, जिसमें उसे आगे चलकर

पेंशन मिल सकती थी, लेकिन उसे लोगों की प्रतारणा और शत्रुता के अलावा औ
कुछ नहीं मिला। उसने अपनी इस मशीन पर कार्लसरुहे और स्ट्रासबर्ग के बी
की सोलह घंटे की पैदल दूरी को सिर्फ एक घंटे में पार किया था। उसने इसके
लिए सरकार से पेटेंट प्राप्त किया जो बादेन रियासत की सीमा में ही बंधा था
किसी ने भी इस आविष्कार पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। कम-से-कम
उसके देश में तो यही स्थिति रही। 1851 में लगभग निर्धनता की स्थिति में
उसकी मृत्यु हुई। उसका नाम 'ड्राइसाइन' के आविष्कार के रूप में ही जाना
गया जो कि रेलवे लाइनों की जांच और मरम्मत के लिए हाथ से चलाई जाने
वाली एक गाड़ी थी। परन्तु इंगलैंड, फ्रांस और अमरीका में उसकी एक लीक
पर चलने वाली इस दो-पहिया गाड़ी ने काफी प्रगति की।

बैरन ड्राइस अपने 'धावक यंत्र' पर (1813)

असल में बैरन ड्राइस की यह गाड़ी इस सही विचार पर आधारित थी कि
पैदल चलते समय आदमी को अपना भार एक पैर से दूसरे पैर पर डालने के लिए
... शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। उसने सोचा कि क्या कोई ऐसा यंत्र
बनाया जा सकता है जो मनुष्य के शरीर को आगे बढ़ते समय बराबर एक
पर ही बनाए रख सके। उसके पहले किसी ने भी इस उद्देश्य की प्राप्ति के

लिए एक लीक पर चलने वाली गाड़ी बनाने का विचार नहीं किया था।[1] लोगों का विचार था कि ऐसी गाड़ी कभी भी सीधी खड़ी नहीं रह सकती। ड्रैस ड्राइस का विचार था कि लोगों का इस तरह सोचना सही नहीं है, और उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि एक लीक पर दौड़ने वाली मशीन पर भी अपना संतुलन बनाए रखना इतना आसान है कि देखकर आश्चर्य होता है।

इस अप्रत्याशित चमत्कार ने पहले तो फ्रांस के और फिर इंगलैंड के फैशन-परस्त लोगों को बड़ा आकर्षित किया। पेरिस के फुटपाथों पर और लन्दन के हाइड पार्क में बहुत जल्दी ही ये दौड़ने की मशीनें, जो पहले 'हॉबी हॉर्स' और फिर 'डैंडी हॉर्स' कहलाई थीं, बहुत बड़ी तादाद में दिखाई देने लगी। आरम्भ में तो शौकीन नौजवान इन पर सवारी करते थे, लेकिन बाद में महिलाएं भी इन्हें चलाने लगीं। यहां तक कि प्रिंस रीजेंट ने भी अपने लिए खास तौर से एक 'डैंडी हॉर्स' बनवाया और खुले आम उस पर सवारी करने लगे। रातों-रात इस तरह की मशीनों का नया उद्योग खड़ा हो गया। इंगलैंड और अमरीका में नये मनोरंजन के लिए हाल बनने लगे, जहां लोग पैसे देकर कुछ देर के लिए इन मशीनों पर सवारी का आनन्द उठाते थे, हालांकि तत्कालीन लेखकगण और जार्ज क्रूकशैंक जैसे व्यंग्य-चित्रकार इनका मजाक उड़ाने से बाज नहीं आते थे। लेकिन अभी आविष्कारकों ने इस पर विचार नहीं था कि इसे आम जनता के लिए परिवहन के एक साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है।

बीस साल के गुजर जाने के बाद ही डमफ्राइजशायर के एक नौजवान लुहार किर्कपैट्रिक मैकमिलन ने इस विचार पर काम शुरू किया। उसने पिछले पहिए के धुरे में दो क्रैंक फिट किए और उन्हें लम्बे लीवरों से चलाया, जिन्हें वह अपने पैर से धकेलता था। मैकमिलन ने 1842 में अपनी इस मशीन पर डमफ्राइज से ग्लासगो तक की 40 मील की यात्रा दो दिन में पूरी की। इतना होने पर भी अभी इस गाड़ी में किसी ने व्यावसायिक रुचि नहीं ली। अगले दस साल के बाद बवेरिया के श्वाइनफुर्ट नामक स्थान के एक जर्मन मैकेनिक फिलिप हाइनरिश फिशर ने, जिसने ड्राइस की दौड़ने की मशीन का अपने बचपन में उपयोग किया

1. फ्रांस के तकनीकी इतिहासकारों का दावा है कि सबसे पहली एक लीक में चलने वाली दो-पहिया गाड़ी 1808 में पेरिस में शुरू हुई थी। लेकिन इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बकिंघमशायर में स्टोक पोजेज के पेरिश चर्च की एक खिड़की में बने चित्र में एक आदमी को साइकल जैसी मशीन पर सवार होकर बिगुल बजाते हुए दिखाया गया है। इस चित्र पर 1643 की तिथि लिखी है, लेकिन स्थान और चित्रकार का कोई उल्लेख नहीं है।

पेंशन मिल सकती थी, लेकिन उसे लोगों की प्रताड़ना और शत्रुता के अलावा और कुछ नहीं मिला। उसने अपनी इस मशीन पर कार्ल्सरूहे और स्ट्रासबर्ग के बीच की सोलह घंटे की पैदल दूरी को सिर्फ एक घंटे में पार किया था। उसने इसके लिए सरकार से पेटेंट प्राप्त किया जो बादेन रियासत की सीमा में ही वैध था। किसी ने भी इस आविष्कार पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। कम-से-कम उसके देश में तो यही स्थिति रही। 1851 में लगभग निर्धनता की स्थिति में उसकी मृत्यु हुई। उसका नाम 'ड्राइसाइन' के आविष्कार के रूप में ही जाना गया जो कि रेलवे लाइनों की जांच और मरम्मत के लिए हाथ से चलाई जाने वाली एक गाड़ी थी। परन्तु इंग्लैंड, फ्रांस और अमरीका में उसकी एक लीक पर चलने वाली इस दो-पहिया गाड़ी ने काफी प्रगति की।

बैरन ड्राइस अपने 'धावक यंत्र' पर (1813)

असल में बैरन ड्राइस की यह गाड़ी इस सही विचार पर आधारित थी कि पैदल चलते समय आदमी को अपना भार एक पैर से दूसरे पैर पर डालने के लिए काफी शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। उसने सोचा कि क्या कोई ऐसा सरल वाहन बनाया जा सकता है जो मनुष्य के शरीर को आगे बढ़ते समय बराबर एक धुरी पर ही बनाए रख सके। उसके पहले किसी ने भी इस उद्देश्य की प्राप्ति के

एक लीक पर चलने वाली गाड़ी बनाने का विचार नहीं किया था।[1] लोगों ...चार था कि ऐसी गाड़ी कभी भी सीधी खड़ी नहीं रह सकती। ड्रैस ...स का विचार था कि लोगों का इस तरह सोचना सही नहीं है, और उसने ...सद्ध कर दिखाया कि एक लीक पर दौड़ने वाली मशीन पर भी अपना सन्तुलन ...ए रखना इतना आसान है कि देखकर आश्चर्य होता है।

इस अप्रत्याशित चमत्कार ने पहले तो फ्रांस के और फिर इंग्लैंड के फैशन-...न लोगों को बड़ा आकर्षित किया। पेरिस के फुटपाथों पर और लन्दन के ...ड पार्क में बहुत जल्दी ही ये दौड़ने की मशीनें, जो पहले 'हॉबी हॉर्स' और ...'डैंडी हॉर्स' कहलाई थीं, बहुत बड़ी तादाद में दिखाई देने लगीं। आरम्भ ...े शौकीन नौजवान इन पर सवारी करते थे, लेकिन बाद में महिलाएं भी इन्हें ...ने लगीं। यहां तक कि प्रिंस रीजेंट ने भी अपने लिए खास तौर से ...'डैंडी हॉर्स' बनवाया और खुले आम उस पर सवारी करने लगे। रातों-रात ...तरह की मशीनों का नया उद्योग खड़ा हो गया। इंग्लैंड और अमरीका में ...मनोरंजन के लिए हाल बनने लगे, जहां लोग पैसे देकर कुछ देर के लिए इन ...ीनों पर सवारी का आनन्द उठाते थे, हालांकि तत्कालीन लेखकगण और जार्ज ...क्रुशैंक जैसे व्यंग्य-चित्रकार इनका मजाक उड़ाने से बाज नहीं आते थे। लेकिन ...सी आविष्कारकों ने इस पर विचार नहीं था कि इसे आम जनता के लिए परि-...हन के एक साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है।

बीस साल के गुजर जाने के बाद ही डमफ्राइजशायर के एक नौजवान लुहार ...र्कपैट्रिक मैकमिलन ने इस विचार पर काम शुरू किया। उसने पिछले पहिए ...ा धुरे में दो क्रैंक फिट किए और उन्हें लम्बे लीवरों से चलाया, जिन्हें वह अपने ...ैर से धकेलता था। मैकमिलन ने 1842 में अपनी इस मशीन पर डमफ्राइज से ...्लासगो तक की 40 मील की यात्रा दो दिन में पूरी की। इतना होने पर भी ...भी इस गाड़ी में किसी ने व्यावसायिक रुचि नहीं ली। अगले दस साल के बाद ...वेरिया के श्वाइनफुर्ट नामक स्थान के एक जर्मन मैकेनिक फिलिप हाइनरिश ...फिशर ने, जिसने ड्राइस की दौड़ने की मशीन का अपने बचपन में उपयोग किया

1. फ्रांस के तकनीकी इतिहासकारों का दावा है कि सबसे पहली एक लीक में चलने वाली दो-पहिया गाड़ी 1808 में पेरिस में शुरू हुई थी। लेकिन इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बकिंघमशायर में स्टोक पोजेस के पेरिश चर्च की एक खिड़की में बने चित्र में एक आदमी को साइकल जैसी मशीन पर सवार होकर बिगुल बजाते हुए दिखाया गया है। इस चित्र पर 1643 की तिथि लिखी है, लेकिन स्थान और चित्रकार का कोई उल्लेख नहीं।

पैदल मिल गई थी, लेकिन उसे लोगों की प्रतारणा और शत्रुता के अलावा और कुछ नहीं मिला। उसने अपनी इस मशीन पर कार्लस्रूहे और स्ट्रासबर्ग के बीच की सोलह घंटे की पैदल दूरी को सिर्फ एक घंटे में पार किया था। उसने इसके लिए सरकार से पेटेंट प्राप्त किया जो बादेन रियासत की सीमा में ही वैध था। किसी ने भी इस आविष्कार पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। कम-से-कम उसके देश में तो यही स्थिति रही। 1851 में लगभग निर्धनता की स्थिति में उसकी मृत्यु हुई। उसका नाम 'ड्राइसाइन' के आविष्कार के रूप में ही जाना गया जो कि रेलवे लाइनों की जांच और मरम्मत के लिए हाथ से चलाई जाने वाली एक गाड़ी थी। परन्तु इंगलैंड, फ्रांस और अमरीका में उसकी एक लीक पर चलने वाली इस दो-पहिया गाड़ी ने काफी प्रगति की।

बैरन ड्राइस अपने 'धावक यंत्र' पर (1813)

असल में बैरन ड्राइस की यह गाड़ी इस सही विचार पर आधारित थी कि पैदल चलते समय आदमी को अपना भार एक पैर से दूसरे पैर पर डालने के लिए काफी शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। उसने सोचा कि क्या कोई ऐसा सरल वाहन बनाया जा सकता है जो मनुष्य के शरीर को आगे बढ़ने समय बराबर एक धुरी पर ही बनाए रख सके। उसके पहले किसी ने भी इस उद्देश्य की प्राप्ति के

लिए एक लीक पर चलने वाली गाड़ी बनाने का विचार नहीं किया था।[1] लोगों का विचार था कि ऐसी गाड़ी कभी भी सीधी खड़ी नहीं रह सकती। ड्रैस ड्रैस का विचार था कि लोगों का इस तरह सोचना सही नहीं है, और उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि एक लीक पर दौड़ने वाली मशीन पर भी अपना सन्तुलन बनाए रखना इतना आसान है कि देखकर आश्चर्य होता है।

इस अप्रत्याशित चमत्कार ने पहले तो फ्रांस के और फिर इंगलैंड के फैशन-परस्त लोगों को बड़ा आकर्षित किया। पेरिस के फुटपाथों पर और लन्दन के हाइड पार्क में बहुत जल्दी ही ये दौड़ने की मशीनें, जो पहले 'हॉबी हॉर्स' और फिर 'डैंडी हॉर्स' कहलाई थीं, बहुत बड़ी तादाद में दिखाई देने लगीं। आरम्भ में तो शौकीन नौजवान इन पर सवारी करते थे, लेकिन बाद में महिलाएं भी इन्हें चलाने लगीं। यहां तक कि प्रिंस रीजेंट ने भी अपने लिए खास तौर से एक 'डैंडी हॉर्स' बनवाया और खुले आम उस पर सवारी करने लगे। रातों-रात इस तरह की मशीनों का नया उद्योग खड़ा हो गया। इंगलैंड और अमरीका में नये मनोरंजन के लिए हाल बनने लगे, जहां लोग पैसे देकर कुछ देर के लिए इन मशीनों पर सवारी का आनन्द उठाते थे, हालांकि तत्कालीन लेखकगण और जार्ज क्रूकशैंक जैसे व्यंग्य-चित्रकार इनका मजाक उड़ाने से बाज नहीं आते थे। लेकिन अभी आविष्कारकों ने इस पर विचार नहीं था कि इसे आम जनता के लिए परिवहन के एक साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है।

बीस साल के गुजर जाने के बाद ही डमफ्राइजशायर के एक नौजवान लुहार किर्कपैट्रिक मैकमिलन ने इस विचार पर काम शुरू किया। उसने पिछले पहिए के धुरे में दो क्रैंक फिट किए और उन्हें लम्बे लीवरों से चलाया, जिन्हें वह अपने पैर से धकेलता था। मैकमिलन ने 1842 में अपनी इस मशीन पर डमफ्राइज से ग्लासगो तक की 40 मील की यात्रा दो दिन में पूरी की। इतना होने पर भी अभी इस गाड़ी में किसी ने व्यावसायिक रुचि नहीं ली। अगले दस साल के बाद बवेरिया के श्वाइनफुर्ट नामक स्थान के एक जर्मन मैकेनिक फिलिप हाइनरिश फिशर ने, जिसने ड्राइस की दौड़ने की मशीन का अपने बचपन में उपयोग किया

---

1. फ्रांस के तकनीकी इतिहासकारों का दावा है कि सबसे पहली एक लीक में चलने वाली दो-पहिया गाड़ी 1808 में पेरिस में शुरू हुई थी। लेकिन इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बकिंघमशायर में स्टोक पोजेज के पेरिश चर्च की एक खिड़की में बने चित्र में एक आदमी को साइकल जैसी मशीन पर सवार होकर बिगुल बजाते हुए दिखाया गया है। इस चित्र पर 1643 की तिथि लिखी है, लेकिन स्थान और चित्रकार का कोई उल्लेख नहीं।

था, अगले पहिए में पैडल लगाए, जिनके कारण गाड़ी के सवार के पैरों की धकेलने की गति को सतत बनाया जा सका और इस प्रकार गाड़ी कम आवाज किए हुए आसानी से चलने लगी। परन्तु न तो मैकमिलन को और न फिशर को ही यह ज्ञात था कि उनकी गाड़ी जब तक चलती रही तब तक गिरती क्यों नहीं? वास्तव में घूमते हुए पहियों का प्रभाव नाचते हुए लट्टू की भांति नहीं, बल्कि जाइरोस्कोप की भांति होता है और गाड़ी जितनी तेजी से चलती है उतनी ही सधी हुई रहती है।

एक फ्रांसीसी अर्नेस्ट मिशो ने पहली बाइसिकल फैक्टरी स्थापित की और फिशर की डिजाइन पर ही एक नमूने की गाड़ी तैयार की। इंगलैंड में भी कुछ फैक्टरियों में बाइसिकलें बनने लगीं, जिनके अगले पहिए में क्रैंक लगे होते थे और पिछला पहिया कुछ छोटा होता था। 1870 के आसपास लोकप्रियता प्राप्त करने वाली इस किस्म की गाड़ी को 'बोन-शेकर' (हड्डी कंपाने वाली) कहा जाता था, क्योंकि इसके पहिए लकड़ी के होते थे और उनमें स्प्रिंग भी नहीं लगी होती थीं। अब इस वाहन के विकास में खेल के शौकीनों ने भी हाथ बटाना शुरू किया। चूंकि इसकी रफ्तार अगले पहिए के चक्करों पर निर्भर करती थी इसलिए उन्होंने उसका आकार खूब बढ़ा दिया और पिछले पहिए का आकार काफी छोटा कर दिया। अपनी इस भद्दी शक्ल के कारण इसे 'पेनी-फार्दिंग' कहा जाने लगा, क्योंकि 'पेनी' सिक्का छोटा होता है, और 'फार्दिंग' बड़ा। इस पर सवारी करने के लिए सर्कस के कलाकार की योग्यता आवश्यक थी। लेकिन यह खासी तेज रफ्तार से चलती थी, और थाइलैंड में इस तरह की साइकलों की दौड़ लोकप्रिय होने लगी। 'द टाइम्स' अखबार ने 1878 में लिखा, "साइकल चलाने वाले जानते हैं कि इसकी सवारी में बड़े खतरे हैं और दुर्घटनाओं की संख्या भी अधिक होती है, लेकिन सब कुछ जानते हुए भी उन्होंने इसके खतरे उठाना स्वीकार किया है।"

एक अंग्रेज लॉसन ने इस समस्या का हल ढूंढ़ निकाला कि साइकलों को छोटा और साथ ही ज्यादा तेज कैसे बनाया जा सकता है। सबसे पहले उसने ही अगले और पिछले पहिए के बीच दांतेदार चक्का और पैडल लगाए। एक स्विस आविष्कारक हान्स रेनोल्ड ने रोलर चेन लगाई, जो सवार के पैरों की शक्ति को केन्द्र में लगे और पैडल से घूमने वाले दांतेदार पहिए से पिछले धुरे पर लगे छोटे पहिए तक पहुंचती थी। अन्य आविष्कारकों ने तार की तीलियों वाले पहिए, स्प्रिंगदार गद्दी, बाल-बेरिंग, गीयर और गीयर शिफ्ट तथा फ्रीव्हील का आविष्कार किया और उन्हें साइकल में जोड़ा। इस प्रकार जब 1880 के दशक

कोवेन्ट्री के जे० के० स्टारले ने बड़ी संख्या में साइकलों का उत्पादन आरम्भ किया तो आधुनिक साइकलो का विकास लगभग पूर्ण हो चुका था। परन्तु एक चीज अब भी गायब थी—और वह था ठीक ढंग का टायर।

बेल्फास्ट मे बसे स्काटलैंड के एक पशु-चिकित्सक डॉ० जॉन बॉयड डनलप के दस वर्षीय पुत्र के कारण टायर का आविष्कार भी संभव हुआ। लड़के ने अपने पिता से कहा कि मुझे स्कूल मे तीन-पहिया साइकल की दौड़ मे भाग लेना है इसलिए मेरी मदद करें। उन दिनों अधिकांश साइकलो पर ठोस-रबर के टायर चढ़ाए जाते थे, जो पत्थर की पक्की सड़कों पर बहुत झटके देते थे। डॉ० डनलप ने बाग में पानी देने के एक पुराने होज पाइप के दो टुकड़े काटे और उन्हें चिपकाकर दो टायर बना दिए। बाद मे उन्होंने इसमे हवा भरी और उन्हें तीन पहिया गाड़ी के पिछले पहियों में लगा दिया। उनका पुत्र दौड़ जीत गया और खुशी-खुशी सड़कों में अपनी गाड़ी चलाता रहा।

इसके केवल एक साल बाद ही 1888 में एक धावक साइकलबाज को इस लड़के से मिलने और गाड़ी देखने का मौका मिला। उसने डॉ० डनलप को सलाह दी कि अपने इस आविष्कार का पेटेंट ले लें। अखबारों ने इसके बारे मे लिखा और एक आयरिश उद्योगपति ने डॉ० डनलप से व्यापारिक समझौता कर लिया तथा हवादार टायरो का उत्पादन शुरू कर दिया।

इसी आविष्कार के कारण साइकल एक व्यावहारिक और लोकप्रिय वाहन बन सकी। 1888 में पूरे ससार में केवल 3,00,000 साइकलें थीं, लेकिन अब इनकी सख्या 750 लाख से भी अधिक होगी। केवल ब्रिटेन मे ही 140 लाख साइकलें होंगी। हालैंड और डेनमार्क मे प्रतिदिन दो व्यक्ति के लिए एक साइकल है और उनका उपयोग राजा-रानियो, स्कूली बच्चों, खिलाड़ियों, डाकियो आदि सभी वर्ग के द्वारा समान रूप से किया जाता है। यही एक एकमात्र ऐसा वाहन जो कम से कम आवाज किए बिना चल सकता है और अपने भार का एक दर्जन गुना भार वहन कर सकता है और दौड़ते हुए आदमी की छह गुना रफ्तार से दौड़ सकता है। इसे हर तरह के रास्ते पर चलाया जा सकता है और कहीं भी खड़ा किया जा सकता है। आज भी अनेक देशो में सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे अधिक लोकप्रिय जन वाहन है। वास्तव में, यह एक आधुनिक तकनीकी चमत्कार है।

डॉ० डनलप का आविष्कार ठीक ऐसे समय हुआ कि उसके कारण एक अन्य वाहन के विकास को निर्णायक सहायता प्राप्त हो सकी, और वह था मोटर कार का आविष्कार जो हवादार टायरों के अभाव मे कभी भी ससार पर विजय प्राप्त नही कर सकता था।

कोलोन के निकट के उसके कारखाने में काम करने लगा और गैस-इंजन के विकास में उसकी मदद करने लगा। उसका विचार था कि किसी सड़क वाले वाहन के लिए गैस-इंजन एक आदर्श मुख्य-चालक हो सकता है, जबकि ओट्टो का विचार था कि इसे एक स्थिर इंजन ही बना रहना चाहिए। डायमलर ने इसमें दो परिवर्तन जरूरी समझे—इंजन को मुख्य नली से प्राप्त गैस की बजाय पेट्रोल वाष्प से चलना चाहिए, तथा ओट्टो की प्रज्वलन प्रणाली (सिलिंडर के बाहर एक छोटी स्थाई लौ, जो अधिकतर संपीडन के एक निश्चित बिन्दु पर एक वाल्व के खुलने पर गैस को विस्फोटित करती थी) बदली जानी चाहिए और उसकी जगह सिलिंडर के भीतर ही विद्युत—प्रज्वलन की व्यवस्था होनी चाहिए।

डायमलर स्टुटगार्ट के समीप कान्स्टाट नामक नगर में चले आए और वहां
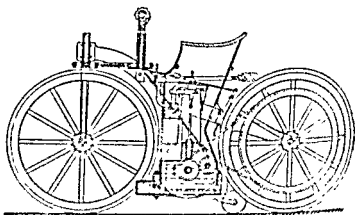
डायमलर द्वारा बनाया गया अपनी मोटर साइकल का स्केच (1885)

उन्होंने अपनी पहली मोटर साइकिल बनाई, जो आंतरदहन द्वारा चालित पहला वाहन थी। उन्होंने 1885 की शरद में अपने घर के पिछवाड़े इस गाड़ी को चलाकर देखा। उस समय उन्हें यह पता नहीं था कि उनके निवास स्थान से 60 मील दूर मानहाइम में एक दूसरे आविष्कारक कार्ल बेंज थे, जो उनसे आयु में छोटे थे, कुछ महीने पहले ही एक छोटी सी पेट्रोल-चालित कार बना चुके थे।

एक रेल कर्मचारी के पुत्र थे, और उन्हें अपना और अपनी शिक्षा का खर्चा चलाने के लिए बहुत छोटी उम्र से ही कड़ी मेहनत करनी पड़ी थी।

काफी दिनों तक कठिन संघर्ष करने के बाद उन्होंने अपनी एक छोटी-सी वर्कशाप खोली और स्वतन्त्र रूप से काम करना शुरू किया। साइकिल के आरंभिक रूप से परिचित होने के कारण उन्हें सडक के लिए उपयोगी किसी मशीनी वाहन के बारे मे सोचने की प्रेरणा मिली। फिर उन्होंने लेनवा का गैस-इंजन देखा और उनका दिमाग डायमलर की लाइन पर काम करने लगा। बेंज भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि पेट्रोलियम का कोई व्युत्पन्न ही ईंधन के रूप में ठीक रहेगा। वह अपेक्षाकृत सस्ता भी होगा। तब तक पेंसिलवानिया प्रदेश मे 1850 के आसपास काफी बड़े तेल भंडारों का भी पता चल चुका था।

बेंज की पहली कार एक तिपहिया गाड़ी थी जिसमें ओट्टो के सिद्धान्त पर काम करने वाला चार स्ट्रोक का इंजन लगा था। यह स्थिर गैस इंजन के 120 चक्करों के मुकाबले में प्रति मिनट 250-300 चक्कर काटता था। उन्होंने अपना निजी विद्युत प्रज्वलन प्रणाली का भी आविष्कार किया और इंजन को ठंडा रखने के लिए उसे ठंडे पानी से भरे एक आवरण से ढँक दिया। इसके पिछले धुरे तक इंजन की शक्ति दो चेनों के जरिये पहुचती थी, जिनके बीच मे एक पुराने ढंग का 'वलय' लगा था। गाड़ी को मोड़ पर घुमाने में जो कठिनाई होती थी, जिसमे बाहरी पहिए को भीतरी पहिए की अपेक्षा तेजी से चलना पड़ता है, उसके हल के लिए उन्होंने एक ब्रिटिश आविष्कार को अपना लिया—यह था अवकल या डिफरेंशियल गीयर जिसे 1877 मे जेम्स स्टारले ने पेटेंट कराया था। इसमे ड्राइवर और मुसाफिर के लिए एक सीट थी और उसके सामने एक डंडे पर एक छोटा पहिया लगाकर स्टीयरिंग की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार पूरी गाड़ी कार्ल बेंज की अपनी निजी रचना थी। सन् 1885 के वसंत की एक सुबह जब उन्होंने अपनी वर्कशाप के सामने यह गाड़ी चलाई तो वह अपने जीवन का सबसे सुखद दिन था। गाड़ी ने एक गोल चक्कर पूरा किया, लेकिन बहुत अधिक उत्साह के कारण वे उसे संभाल नही सके और गाड़ी एक दीवार से टकराई और इस तरह यह प्रयोग समाप्त हो गया।

1887 मे पेरिस की एक प्रदर्शनी में बेंज ने एक सुधरे हुए माडल का प्रदर्शन किया। लेकिन किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु जब साल भर बाद उन्होंने उसे म्यूनिख की सड़कों पर चलाना शुरू किया तो बड़ी सनसनी फैली। और कई देशों से उन्हें मोटरकार के आर्डर मिलने लगे। इधर जब तक बेंज वापस लौटकर मानहाइम आए तो उन्हें मालूम हुआ कि इस बीच उनके 13 और 15 साल के दो लड़कों ने उनकी ऐसी ही एक गाड़ी में अपनी माता को फोर्ज़हाईम की सैर करा दी और इस तरह कुल मिलाकर 125 मील की यात्रा पूरी की थी।

रास्ते में उन्होंने गाड़ी की कुछ मरम्मत भी की। यह उस समय तक किसी भी मोटरकार द्वारा तय की गई सबसे लम्बी दूरी थी और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि ऐसी गाड़ी को चलाना कोई बहुत मुश्किल काम नहीं है।

गोटलीब डायमलर ने अपनी पहली चार पहियों वाली कार 1886 में बनाई। यह काफी बड़ी और भारी भरकम गाड़ी थी, जो देखने में एक शानदार बग्घी जैसी लगती थी। इसमें डेढ़ अश्वशक्ति का इंजन और सिर्फ एक सिलिंडर था। फिर भी यह 18 मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलती थी। कुछ समय तक उन्होंने अपने इंजन मोटरबोटों में भी लगाए, और एक इंजन एक गुब्बारा वायुयान में भी लगाया जो एक बार उड़ने के बाद दोबारा नहीं उड़ सका। 1887 से 1889 इतने तक डायमलर ने अपने मुख्य डिजाइनर विलहेल्म मेबाख की सहायता से मोटरकार पर काम जारी रखा और दोनों ने मिलकर जो माडल तैयार किया, उसे 1889 की पेरिस-प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया। चार सीटों वाली इस गाड़ी में पानी से ठंडा होने वाला एक इंजन और चार गीयर थे। यह देखने में बिना घोड़ों की बग्घी जैसी नहीं, बल्कि बिलकुल नयी डिजाइन की गाड़ी लगती थी। बग्घियां बनाने वाली एक फ्रांसीसी कंपनी ने डायमलर की कारें बनाने का लाइसेंस प्राप्त कर लिया, और तभी से फ्रांस संसार में मोटरकार बनाने वाला प्रमुख देश बन गया। फ्रांस में ही 1894 में सबसे पहली मोटर दौड़ का आयोजन हुआ, जिसमें कारों ने पेरिस से रूएन और फिर पेरिस तक की दूरी तय की। इस दौड़ में डायमलर की एक कार विजयी रही जिसने 20 मील प्रति घंटे की रफ्तार प्राप्त की थी। कार्ल बेंज ने भी अपनी अनेक कारें फ्रांस में बेचीं। वे कहा करते थे, "जर्मनी मोटर कार का पिता और फ्रांस माता है।"

अमरीका को अपनी पहली मोटरकार के लिए कुछ साल इंतजार करना पड़ा। 1893 में कहीं जाकर एक अमरीकी मैकेनिक चार्ल्स ई० डूरिया को अपनी पहली पेट्रोल-चालित गाड़ी सड़क पर लाने में सफलता मिली। वह उसमें सवारी तो करता था, लेकिन उसकी रफ्तार को नियंत्रित नहीं कर पाता था। लेकिन उसका दूसरा माडल इससे बेहतर सिद्ध हुआ और उसने 1900 के पहले के सालों में अनेक देशी और विदेशी मोटर कारों के मुकाबले में दौड़ें जीतीं।

डेट्रायट में, जो बाद में अमरीका का सबसे बड़ा मोटर-निर्माण केन्द्र बना, पहली मोटरकार 1896 में बनी। इसे हेनरी फोर्ड नामक एक बिजली-मिस्त्री ने बनाया था। दो सालों में ही बनी इस गाड़ी में 4 अश्वशक्ति का एक इंजन और दो सिलिंडर थे। यह गाड़ी युवा फोर्ड की योग्यता और कल्पना शक्ति का प्रमाण थी। फोर्ड ने विचार किया कि अमरीका में, जो तेजी से एक धनी देश बनता जा

रहा था और जिसमें सभी स्थान बहुत दूर-दूर स्थित थे, असहय मोटर गाड़ियों की आवश्यकता होगी। फिर भी शुरू में अमरीका में मोटरकार का बहुत अधिक विरोध हुआ। विरोध करने वालों में वे लोग प्रमुख थे, जो घोड़ो का व्यवसाय करते थे, उन्हें पालते और बेचते थे, इनके अलावा लुहार और चारा बेचने वाले भी थे, जिन्हें घोड़ा गाड़ियों के बंद हो जाने से नुकसान होने की आशंका थी। 1890 के आसपास अमरीका में परिवहन के काम में लगभग 180 लाख घोड़े और खच्चर लगे हुए थे और रेलों से बचा हुआ यातायात का सारा काम सभालते थे।

फोर्ड आविष्कारक उतने बड़े नहीं थे जितने कि एक कुशल सगठनकर्ता थे और आविष्कृत वस्तुओं में सुधार करने की उनकी योग्यता भी बहुत अच्छी थी। उन्हें यह समझते देर नही लगी कि यूरोपीय कारो की असली खामियां क्या है—इनमें से अधिकांश कारें आम लोगों की दैनिक आवश्यकताओ को ध्यान में रख कर नही, बल्कि खिलाड़ियों और शौकीनों के लिए बनाई गई थीं। अमरीका को ऐसी कारों की ज़रूरत थी जो बढ़िया, टिकाऊ और मजबूत हो और आम लोगो के लिए उपयोगी और सस्ती हों तथा जिनका रख-रखाव भी कमखर्च हो। हेनरी फोर्ड ने ऐसी उपयोगी मोटरकार बनाने की अपनी आकांक्षा मे आश्चर्यजनक सीमा तक सफलता प्राप्त की। उनकी 'माडल टी' गाड़ी, लोगो ने जिसका नाम 'टीन लीज़ी' रख दिया था, इतनी लोकप्रिय हुई कि शीघ्र ही वे संसार के एक सबसे धनी और विख्यात व्यक्ति बन गए।

उन्होने अपनी कारों के उत्पादन के लिए एक नया कारखाना खोला जो एक मील के पांचवें हिस्से तक लम्बा था। इसमें उन्होने एक ही समय मे बड़ी सख्या में कारें तैयार करने के लिए अपनी एक 'असेम्बली लाइन' या कन्वेयर-बेल्ट विधि का सूत्रपात किया। यह उस समय की बात है जब अधिकांश यूरोपीय कारें कारीगरों द्वारा स्वयं अपने हाथों तैयार की जाती थी। हमारी नज़र से 1908 की 'टिन लीज़ी' अपनी ऊची बॉडी, इजन के छोटे से हुड, खुले और बिना दरवाज़े के केबिन की वजह से खासी हास्यास्पद गाड़ी थी। परन्तु इसी गाड़ी ने अमरीका को कारों के मामले मे मशहूर कर दिया। 1908 से 1927 तक 'टिन लीज़ी' ही बिक्री के लिए तैयार होती रही और कुल 150 लाख की तादाद मे बिकी। अन्त मे फोर्ड ने तय किया कि अब कुछ अधिक सुन्दर माडल तैयार होना चाहिए।

ब्रिटेन तो अपने 'लाल झंडा कानून' की वजह से मोटरकार के शुरू के विकास में कोई योग नहीं दे सका। लेकिन कुछ व्यक्तियों ने जिनमें वैज्ञानिक और वकील फेडरिक विलियम लांचेस्टर, जिन्होने 1895 में एक गाड़ी बनाई थी और ससद सदस्य एवलिन इलिस जैसे लोगो ने मोटरकार के समर्थकों को सगठित किया
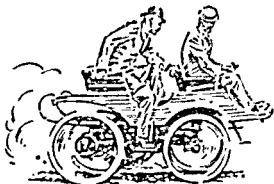
एक प्रारम्भिक लैंचेस्टर मोटर कार (1895)

और इस पुराने कानून के खिलाफ आन्दोलन छेड़ दिया। इलिस ने तो एक फ्रांसीसी कार खरीदी और उसे लंदन की सड़कों पर खूब तेज रफ्तार से चलाकर पुलिस को चुनौती दी। उनकी कार के आगे कोई आदमी लाल झंडा लेकर नहीं चला, फिर भी किसी पुलिस वाले की हिम्मत नहीं हुई कि उनकी गाड़ी को रोकता। इस विरोध-प्रदर्शन ने जनता को यहां तक जाग्रत किया कि अन्त में 1896 में संसद को साठ साल पुराने और निरर्थक 'लाल झंडा कानून' को ही समाप्त कर देना पड़ा।

यह कदम ब्रिटेन के मोटरकार शौकीनों के लिए ही नहीं, बल्कि मोटर उद्योग के लिए भी बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ। धीरे-धीरे उसका आरम्भ हुआ। शुरू में तो फ्रांस और जर्मनी के कारखाने इससे आगे रहे, लेकिन अन्त में अमरीका बड़ी तादाद में उत्पादन की अपनी प्रणाली के कारण सबसे आगे बना रहा। 1918 के बाद कुछ तेजी के साथ प्रगति शुरू हुई और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तो उत्पादन काफी बढ़ गया। 1948 में ब्रिटेन ने विदेशों को अधिक संख्या में कारें भेजने वाले देशों में प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया। उसने लगभग ढाई लाख गाड़ियों का निर्यात किया। दस साल बाद यह संख्या भी दूनी हो गई। इसी अवधि में ब्रिटेन में चलने वाली कारों की संख्या प्रति 24 व्यक्ति एक कार से बढ़कर प्रति 14 व्यक्ति एक कार हो गई। 1948 में अमरीका में प्रति 5 व्यक्ति एक कार थी और दस साल बाद वहां एक परिवार के पीछे तीन कारों का औसत था। तेल के उत्पादन में भी इसी रफ्तार से वृद्धि हुई—एक साल में 13 प्रतिशत के हिसाब से। यह भी उल्लेखनीय है कि यूरोप में कारों के लिए शोधित-पेट्रोल के उत्पादन

में 1937 से 1945 के बीच कम से कम 450 प्रतिशत तक वृद्धि हुई।

सारे संसार में अब प्रतिवर्ष कारों की संख्या लगभग 15 प्रतिशत की गति से बढ़ जाती है। आखिर इसका अन्त क्या होगा ? मोटरकार के विकास ने दो पीढ़ियों की कम अवधि में ही लाखों व्यक्तियों के लिए परिवहन का एक सस्ता माध्यम उपलब्ध करा दिया। और अभी तो इसे अल्पविकसित देशों में अपनी भूमिका को पूरी तरह अदा करना बाकी है। परन्तु उधर बड़े नगरों में मोटर कारों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि होती जा रही है कि नगर-नियोजकों, ट्रैफिक इंजीनियरों, परिवहन अधिकारियों, पुलिस और यहां तक कि स्वयं कारवालों के लिए बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गई है। जब प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व पहली बार मोटर बसों का चलना शुरू हुआ तो नगरों में सार्वजनिक परिवहन की रफ्तार 50 से 100 प्रतिशत तक बढ़ गई थी। लेकिन अब फिर से यह रफ्तार घटकर 1830 के आसपास पहली बार चलनेवाली उन बसों की रफ्तार के बराबर हो गई है जिनमें घोड़े जोते जाते थे। अगर बड़े नगरों में परिवहन बिलकुल ठप्प होने से बचाना है तो सड़कों में बढ़ती हुई भीड़-भाड़ को कम करने की विश्व-व्यापी समस्या का हल ढूंढ़ना ही होगा। परन्तु इस समस्या को हल करने की जिम्मेदारी तकनीशियनों से अधिक प्रशासकों की और आविष्कारकों से अधिक नगर-नियोजकों की है।

फिर भी अगर ट्रैफिक की समस्या का हल निकालना है तो कुछ ऐसी बातें हैं जहां इन दोनों वर्गों को मिलकर काम करना पड़ेगा। इनमें से एक नयी सड़कों की योजना बनाना है। ब्रूसेल्स और पेरिस जैसे कुछ नगरों में सड़कों पर गाड़ियों की भीड़ को कम करने के लिए ऐसी सड़कें और चौराहे बनाए हैं, जो एक-दूसरे के नीचे से या ऊपर से होकर गुजरते हैं। ब्रिटेन के इंजीनियरों का सुझाव है कि नगरों के बाहर-बाहर गुजरने वाली 'रिंग रोड' बनाई जानी चाहिए तथा रेलवे लाइनों के ऊपर-ऊपर गुजरने वाली सड़कें भी मोटरों के लिए बनाई जा सकती हैं, क्योंकि उनके लिए अलग से स्थान की व्यवस्था न करनी पड़ेगी। अमरीकी इंजीनियरों ने गोल दायरों में कम दूरी तक चलने वाली ऐसी भूमिगत रेलें बनाई हैं, जिन्हें 'स्पीडवाक' या 'कार्वेयर' कहा जाता है और जिनका उपयोग कम दूरी का सफर करने वाले ऐसे लोग करते हैं जिनकी अपनी गाड़ियां हैं, लेकिन जिन्हें पता है कि कम दूरी के सफर के लिए अपनी गाड़ी का उपयोग करने की बजाय वे सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करके अपने स्थानों को जल्दी पहुंच सकते हैं।

एक और तरीका है जिससे लम्बी मोटर यात्रा अधिक सुरक्षित हो सकती है, वह है 'इलेक्ट्रॉनिक सड़क'। इस सड़क के किनारे एक 'गाइड' पट्टी लगी रहती है जो कार मे लगे एक विशेष ग्राहक यंत्र को इस प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक संकेत दे सकती है जिनके सहारे गाड़ी एक स्थिर रफ्तार से सड़क पर अपनी निश्चित ट्रैफिक लेन में बनी रहती है और स्टीयरिंग और ब्रेक भी स्वचालित रूप से नियमित रहते हैं, ताकि रास्ते में कोई टक्कर या दुर्घटना न हो सके। जब तक ड्राइवर ऐसी सड़क पर रहता है तब तक गाड़ी के संचालन का काम इलेक्ट्रॉनिक यंत्र करते हैं और वह स्वयं चाहे तो आराम से बैठा रहे, पढ़ता रहे या सोता रहे।

परन्तु ऐसी कार में पिस्टन-इंजन की बजाय गैस-टरबाइन का उपयोग करना पड़ेगा, क्योंकि इसे स्वचालित व्यवस्था के अनुरूप बनाना आसान होता है। गैस-टरबाइन विमान के जेट इंजन का ही एक लघुरूप होगा और भावी मोटर गाड़ियों के लिए अधिक अनुकूल सिद्ध होगा। भाप-इंजन की तरह इसमें पश्चाग पुर्जे नहीं होते तथा ईंधन—जो कि पैराफिन जैसा सस्ता तेल या कोयले का चूरा हो सकता है—एक दहन कक्ष में जलता है, और प्रसारित होती हुई गैसें टरबाइन की ब्लेडों को चलाती है। इस मशीन को अधिक हवा की जरूरत होती है, जिसे टरबाइन द्वारा चालित एक कम्प्रेशर संपीडित करता है और ईंधन का छिड़काव करने वाले यन्त्रों के बीच से गुजारते हुए दहन कक्ष (या कक्षों) में ठेलता है। इसमे दहन पिस्टन भी इजन की भाति रुक-रुककर नहीं, बल्कि लगातार होता है और जब गैसें टरबाइन की ब्लेडों से टकराती हैं, तो बहुत गरम होती हैं। गैस-टरबाइन की ये विशेषताएं विभिन्न प्रकार की मशीनों पर समान रूप से लागू होती हैं, चाहे उसका उपयोग किसी विमान के पंखे को चलाने के लिए हो, चाहे जहाज के पानी काटने के पखे या किसी मोटरकार के पहियों को। 'शुद्ध' जेट-इजन में टरबाइन कम्प्रेशर को चलाने के अलावा और कुछ नहीं करती जबकि बाहर निकलने वाली गैस की बची हुई सारी ऊर्जा विमान के प्रोपेलर को चलाने में काम आती है।

गैस-टरबाइन मूलतः एक सरल मशीन होती है, जिसे नियन्त्रित करना आसान होता है और जिसका भार ऊर्जा अनुपात पिस्टन-इंजन की अपेक्षा कहीं अच्छा होता है। यह अधिक मजबूत होती है, इसमें गीयर की जरूरत नहीं होती और उच्चकोटि का ईंधन भी आवश्यक नहीं होता। फिर क्यों गैस-टरबाइन कार को पहले नहीं बनाया जा सका? इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि जब यह मशीन चलती है तो तापमान बहुत ज्यादा हो जाता है। ऐसी मिश्र धातुओं का विकास भी तब तक नहीं हो सका था, जो लम्बे समय तक गैसों के ताप को

बरदाश्त कर पातीं। इसके अलावा गरम निकास-गैस की समस्या थी जो लोगों के लिए और सड़क की दूसरी गाड़ियों के लिए भी बहुत हानिकर सिद्ध हो सकती थी। इस तरह के इंजनों में ईंधन भी ज्यादा खर्च होता है। टरबाइन को अच्छी तरह काम करने के लिए ज्यादा चक्कर काटने पड़ते हैं। इसलिए एक प्रकार की भन्नाहट की आवाज बराबरी जारी रहती है।

फिर भी इस दिशा में काफी प्रगति हुई है और कुछ समय बाद हम गैस-टरबाइन वाली कारें सड़कों पर भी देख सकेंगे। अनेक इंजीनियरों का विश्वास है कि अन्त में पिस्टन—इंजन कारों की जगह टरबाइन कारों का ही प्रचलन हो जाएगा। 1952 में रोवर द्वारा बनाई गई एक ब्रिटिश टरबाइन कार ने 150 मील प्रति घंटा से अधिक की रफ्तार हासिल की और इसके इंजन का वजन केवल 300 पौंड था। अगर यही रफ्तार पिस्टन इंजन से हासिल की जाती तो 1000 पौंड भार का इंजन जरूरी होता। एक अन्य प्रयोगात्मक ब्रिटिश कार में जिसे सफलतापूर्वक जांचा जा चुका है, तीन टरबाइन और आठ कम्प्रेसर थे और उसने 35,000 चक्कर प्रति मिनट पर 160 अश्वशक्ति की ताकत पैदा की।

अमरीका की जनरल मोटर्स कम्पनी ने 1958 में अपनी प्रयोगात्मक टरबाइन कार 'फायरबर्ड—3' का परीक्षण किया जिसके इंजन के चक्कर प्रति मिनट केवल 27,000 थे, और गैस का तापमान—870° सेंटीग्रेड था। 225 अश्वशक्ति उत्पन्न करने वाले इस इंजन का वजन 600 पौंड था। एक नयी व्यवस्था के
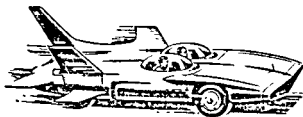
एक अमरीकन टरबाइन कार का आरेख — फायर बर्ड 3

कारण इस कार की सुरक्षा काफी बढ़ गई थी जिसमें एक भाप रिजनरेटर 'निकास' के 90 प्रतिशत ताप को कम्प्रेसर कक्ष में लौटा देता था। फिर भी इसमें डिजाइनकारों ने 10 अश्वशक्ति का एक छोटा पिस्टन इंजन भी लगा दिया था जो विद्युत जनरेटर, वातानुकूलन प्रणाली, हाइड्रॉलिक नियंत्रण व दूसरे कई अनेक सहायक यंत्रों के लिए शक्ति प्रदान करता था। अन्य प्रयोगात्मक टरबाइन

माडलों की भाँति इस कार में भी न तो कोई स्टीयरिंग व्हील था और न एक्सेलेटर पैडल। इसमें इनकी बजाय एक छोटा स्टीयरिंग और नियंत्रण लीवर था, जिसे ड्राइवर एक हाथ से चलाता था तथा गाड़ी को मोड़ने, रफ्तार को तेज या कम करने के आदेश एक इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली से कार्यान्वित होते थे। इन विशेषताओं के कारण इस गाड़ी को इलेक्ट्रॉनिक सड़कों पर चलने के योग्य बनाने में भी सुविधा होगी।

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की कार का आम ग्राहकों के लिए सस्ते मूल्य में बड़ी संख्या में उत्पादन शुरू होने में अभी काफी लम्बा समय लग जाएगा। लेकिन तब तक मोटर चालन में कोई न कोई ऐसा क्रांतिकारी सुधार करना जरूरी हो जाएगा ताकि सड़क का उपयोग करने वाले सभी लोगों के लिए आज की अपेक्षा अधिक सुरक्षा की व्यवस्था हो सके। तब तक न कारें केवल ऐसे विशेष मोटर-मार्गों पर चलने लगेंगी जिन पर उनके लिए इलेक्ट्रॉनिक व्यवस्था भी हो सकती है, तथा जिन पर कोई पैदल राहगीर नहीं चलेगा, बल्कि वे ऐसी शहरी सड़कों के लिए भी उपयोगी बन सकेंगी जिनकी स्थिति आज से बिलकुल भिन्न होगी तथा जिन पर राहगीरों की सुरक्षा को सर्वोपरि स्थान प्राप्त होगा। सड़कों पर होने वाली दुर्घटनाओं की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए डिजाइनकारों के लिए सारी व्यवस्था पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो जाएगा। अब तक वे सड़क का इस्तेमाल करने वाले सभी लोगों की सुरक्षा पर ध्यान देने की बजाय अपना ध्यान कारों की रफ्तार बढ़ाने, उन्हें कम खर्च बनाने और ड्राइवरों की दृष्टि से सुरक्षित बनाने पर ही केन्द्रित करते रहे हैं। सचाई यह है कि मोटर कार ड्राइवर की दृष्टि से जितनी ही निरापद होगी, वह उतनी ही तेजी से मोटर चलाने के लिए लालायित होगा और सड़क पर चलने वाले की सुरक्षा पर उतना ही कम ध्यान देगा। हालांकि निजी कारों के लिए टर्बो-इंजनों का प्रचलन शुरू होगा ही, लेकिन भारवाही गाड़ियों, बसों और ऐसी ही अन्य गाड़ियों के लिए उनका वर्तमान विशेष मुख्य-चालक लम्बे समय तक कायम रहेगा। यदि टरबाइन को डीजल इंजन या भारी तेल इंजन की जगह लेनी है तो उसे अभी और खूबियां पैदा करनी होंगी।

यह मुख्य-चालक पेट्रोल इंजन के जितना ही पुराना है। प्रीस्टमैन के उपनाम से विख्यात दो अंग्रेज भाइयों ने 1886 में एक पैराफिन—तेल इंजन का पेटेंट प्राप्त किया था जो कि ओटो के गैस-इंजन का ही रूपान्तर था। इसमें तेल का छिड़काव एक वाष्पक में होता था, जो एक लौ और इंजन के निकास से गरम होता था, तथा इस तरह जो गैस तैयार होती थी, वह एक स्पार्क प्लग द्वारा

सिलिंडर के भीतर जलती थी। एक अन्य अंग्रेज आविष्कारक हर्बर्ट ऐक्रॉयड स्टूअर्ट ने भारी तेल के इंजन में कुछ और विकास किया। सबसे पहले उसने ही इस बात को समझा कि संपीडन का ताप सिलिंडर में ईंधन का प्रज्वलन कर सकता है, और इस प्रकार स्पार्किंग प्लग या प्रज्वलन की ऐसी ही किसी पृथक् युक्ति को अनावश्यक सिद्ध कर सकता है। ऐक्रॉयड स्टूअर्ट ने 1890 में अपने पेटेंट के लिए आवश्यक सूचनाएं प्रस्तुत कीं, लेकिन उसे निर्माताओं का पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।

इस बीच एक युवा जर्मन इंजीनियर रूडोल्फ डीजल ने भारी तेल इंजन को पक्का बनाने में अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा था। उसके विचारों का क्रम म्यूनिख तकनीकी कालेज के एक प्रोफेसर के व्याख्यान से आरम्भ हुआ था, जहां वह 1878 में विद्यार्थी था। उस प्रोफेसर ने बताया था कि एक 'आदर्श' ताप इंजन किन परिस्थितियों में काम कर सकता है और ऐसा इंजन उस भाप-इंजन से कहीं ज्यादा बढ़िया होता है, जो ईंधन की अन्तर्निहित ऊष्मा के 10 या 12 प्रतिशत अंश से अधिक को ऊर्जा में नहीं बदल सकता। लेकिन अगर किसी अतर्दहन इंजन के सिलिंडर के भीतर के तापमान को ईंधन के स्थिति-परिवर्तन के दौरान पर्याप्त मात्रा में स्थिर बनाए रखा जा सके, तो इस परिवर्तन से उत्पन्न अधिकांश ऊष्मा ऊर्जा बन जाएगी। डीजल ने बाद में बताया कि "यह विचार बराबर मेरे मन में बना रहा, और मैं अपने खाली समय के हर क्षण में ऊष्मागतिकी सबंधी अपने ज्ञान को बढ़ाता रहा।"

उस व्याख्यान के चौदह वर्ष बाद डीजल को अपनी समस्या का हल मिल सका, और उसने अपने उस इंजन के लिए एक पेटेंट भी प्राप्त कर लिया जो अभी बना भी नहीं था, लेकिन जिसके बारे में उसे विश्वास था कि वह जरूर काम दे सकेगा। अनेक बड़ी जर्मन इंजीनियरी कंपनियों में, जिनमें क्रुप की कंपनी भी सम्मिलित थी, उसे अपने आविष्कार को विकसित करने में सहायता प्रदान की, और उसने 1893 में अपना पहला माडल तैयार कर लिया। हालांकि सिलिंडर को एक स्थिर तापमान पर बनाए रखने में उसे पूरी सफलता नहीं मिली, फिर भी उसने कम से कम दबाव को स्थिर बनाए रखा, जो कि सामान्य पेट्रोल-इंजन के विपरीत बात थी, क्योंकि पेट्रोल-इंजन में दहन स्ट्रोक के दौरान दबाव में बहुत अधिक परिवर्तन होता है। डीजल ने सिलिंडर में हवा को इतना संपीडित किया कि संपीडन स्ट्रोक के अन्त में तरल ईंधन को प्रज्वलित करने के लिए काफी उच्च तापमान उत्पन्न हो गया। बाद में यह किसी स्पार्क प्लग या अन्य प्रज्वलन युक्ति के बिना ही सिलिंडर के ऊपरी भाग पहुंच जाता था। लेकिन ईंधन को धीरे-धीरे
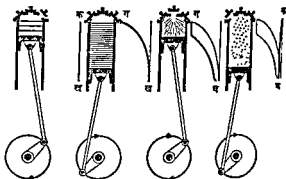
डीज़ल-इंजन की गति का चित्र (क, ख, ग, घ वाल्वों के आरेख के साथ। बायें से दायें—चूषण, संपीडन, दहन (शक्ति आघात), निष्कास।

ही सिलिंडर में प्रवेश कराया जाता था जिससे कि पिस्टन के नीचे की ओर के स्ट्रोक के पूरे दौर में दबाव बराबर स्थिर बना रहता था।

इसके लाभ स्पष्ट थे। इस इंजन में स्पार्क प्लग, बैटरी या प्रज्वलन प्रणाली की आवश्यकता नहीं थी। इसमें तरल ईंधन को गैस में बदलने और उसे हवा से मिश्रित करने के लिए कार्बुरेटर की आवश्यकता नहीं थी, और इसमें सस्ता भारी तेल इस्तेमाल किया जा सकता था। सबसे अच्छा पेट्रोल-इंजन ईंधन में निहित ऊष्मा के 28 प्रतिशत को ऊर्जा में बदल देता है, लेकिन डीज़ल इंजन 35 प्रतिशत को ऊर्जा में बदलता है। इसकी कुछ खामियां भी हैं। अन्यथा बहुत पहले ही डीज़ल-इंजन पेट्रोल-इंजन को मात दे चुका होता। यह पेट्रोल-इंजन का दोगुना भारी और उससे ज्यादा खर्चीला होता है। इसमें शोर भी ज्यादा होता है और भारी तेल की निकास गैसों से बड़ी परेशानी होती है। यह मालवाही ट्रकों और बसों के लिए ज्यादा उपयोगी है, हालांकि ब्रिटेन और जर्मनी में टैक्सियों में इसका उपयोग बढ़ता जा रहा है, क्योंकि एक तो यह बहुत मजबूत है, दूसरे इसका ईंधन सस्ता होता है। लम्बी दूरी की यात्रा और अधिक घंटे तक काम करने की दृष्टि से यह सस्ता पड़ता है। इसे अधिक बड़े यूनिटों में बनाया जा सकता है, यद्यपि पेट्रोल इंजन को एक सीमा से अधिक बड़ा बनाना व्यावहारिक नहीं होता। वहीं
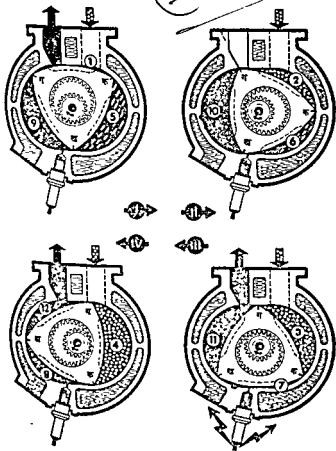
वांकेल का रोटरी-पिस्टन इंजन ।

की थी—अर्थात्, हाईड्रोजन और आक्सीजन के सम्पर्क/संयोजन से करेंट और पानी पैदा करना। उन्हें पर्याप्त मात्रा में बिजली पैदा करने में सफलता नहीं मिली। लेकिन विद्युत् ऊर्जा के संचयन की कोई और सुविधाजनक युक्ति ढूंढ निकालने की समस्या के सिलसिले में यह विचार बार-बार प्रस्तुत होता रहा। कुछ लोग अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस ऊर्जा का संचयन वास्तविक विद्युत् के रूप में करने की बजाय सम्भवतः गैस के रूप में करना अधिक सरल होगा।

कैम्ब्रिज के एक युवा अंग्रेज रसायनविद् फ्रांसिस टी० बेकन ने 1932 में इसी दिशा में प्रयोग करना आरम्भ किया। अन्त में सत्ताइस साल बाद वे विपरीत विद्युत्-विश्लेषण की अपनी प्रणाली का प्रदर्शन करने में सफल हुए। ईंधन—सेल में वास्तव में सेलों की एक पूरी बैटरी होती है जिसके अन्दर विद्युत्

सेल की बनावट

ईंधन सेल
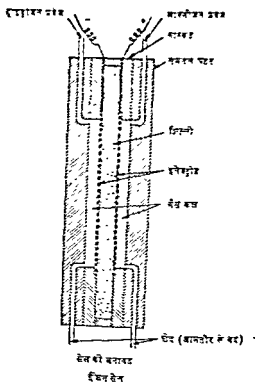
धारा उत्पन्न होती है। इसमे दो इलेक्ट्रोड होते हैं जो निकल चूर्ण से बनी चपटी छिद्रल प्लेटों के रूप मे होते हैं और पोटेशियम हाइड्रोक्साइड के 40 प्रतिशत के घोल मे लटके होते हैं तथा प्रति वर्ग इंच सैकडो पौंड के दबाव पर हाइड्रोजन और आक्सीजन गैसो से पृथक् रूप से पोषित होते है। जब ये सेल चालू होते हैं तो 200° सेंटीग्रेड का तापमान उत्पन्न करते हैं और गैसो से जो पानी तैयार होता है, वह भाप के रूप मे निकल आता है।

बेकन के पहले माडल ने 24 वोल्ट पर 5 किलोवाट बिजली पैदा की जो किसी फोर्क लिफ्ट ट्रक या वृत्ताकार आरी अथवा वेल्डिंग यन्त्र को चलाने के लिए पर्याप्त थी। उनके विचार मे ईंधन सेल की क्षमता को 80 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है, अर्थात् एक पौंड मिश्र गैस से एक किलोवाट घंटा से अधिक बिजली पैदा की जा सकती है।

अमरीका मे अनेक शोधक दलो ने इसी दिशा मे काम को आगे बढ़ाया और प्रति पौंड भार पर 250-300 वाट घंटे की क्षमता वाले ईंधन सेल तैयार किए (एक मानक कार बैटरी की क्षमता 8-10 वाट घंटे प्रति पौंड मानी जाती है।) एक प्रयोगात्मक ट्रैक्टर को खेतो मे चलाकर देखा गया जिसके इंजन मे 1008 ईंधन सेल और 20 अश्वशक्ति की एक विद्युत् मोटर लगी थी। प्रोपेन और आक्सीजन से चालित ये ईंधन सेल 15 किलोवाट बिजली पैदा करते थे जो ट्रैक्टर मे लगे हल को खींचने के लिए पर्याप्त थी। इसी तरह जनरल मोटर्स कार्पोरेशन ने एक ईंधन सेल कार तैयार की। इसमे प्रत्येक पहिए मे सम्बद्ध चार विद्युत् मोटरें लगी थीं। इसलिए इसमे गीयर-बक्स ट्रांसमिशन डिफरेंशियल चालन शाफ्ट और पिछले धुरे की आवश्यकता नही थी। कमी लोग भी ईंधन सेल से चलने वाली गाड़ियो के विकास मे लगे है। ईंधन सेल की जो मुख्य विशेषताएं है, उनमे आवाज का अभाव, खर्च मे काफी कमी और हानिकर धुएं मे बचत तो प्रत्यक्ष ही है।

ईंधन सेल का प्रथम महत्त्वपूर्ण उपयोग एक कृत्रिम अन्तरिक्ष मे किया गया, जिसमे इससे रेडियो ट्रांसमीटर के लिए बिजली पैदा की गयी थी। ईंधन सेल से परिवहन के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन की सम्भावना है इस सीमा तक कि अन्त मे यह बसो और लारियो मे प्रयुक्त होने वाले डीजल इंजनो को भी मात दे सकता है। बाद मे यह रेलो और छोटे जहाजो को चलाने के काम भी आ सकता है। परन्तु सबसे पहले इससे निजी कारो के ही सार्वजनिक होने की सम्भावना है। हाल के वर्षो मे शहरी उपयोग के लिए ऐसी विद्युतकारो की उपयोगिता मे बहुत रुचि ली जाने लगी है, जो छोटी हो और कम रफ्तार वाली

रूप का उपयोग किया करते थे—डोंगी पर एक आदमी खूब पत्तियों वाली डाली लेकर खड़ा हो जाता था, ताकि बहती हुई हवा के बल पर नाव को चलाया जा सके। उत्तरी अमरीका के इंडियन आदिवासियों की पालदार नौकाओं का रूप यह होता था कि एक या दो आदमी लम्बी चौड़ी खाल या कंबल को फैलाकर नाव में खड़े हो जाते थे और दूसरा आदमी एक छोटा चप्पू लेकर नाव को नियंत्रित करता था।

यह समझना कठिन नहीं है कि भूमि पर परिवहन के शुरू होने के बहुत पहले ही जल परिवहन क्यों आरम्भ हुआ। जल आमतौर से समतल होता है और उस पर किसी प्रकार की रुकावट की संभावना नहीं। इसके अलावा, जमीन की तरह पानी पर जंगल, पहाड़, खाई या दलदल को पार करने की समस्या नहीं होती।

चमड़ा मढ़ी नाव में आदिम मानव

पानी पर घर्षण की समस्या कम से कम पैदा होती है, और उसका सामना करने के लिए बहुत ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ता। जमीन पर हवा परिवहन के लिए हवा को काबू में करने से कोई खास लाभ नहीं होता, लेकिन समुद्र पर किसी लट्ठे पर कपड़े का टुकड़ा तानकर पाल बनाई जा सकती है और उसके सहारे नाव के बहाव को बढ़ाया जा सकता है—और यह बात हमारे पूर्वजों ने शुरू ही समय में मालूम कर ली थी। अग्नि के प्रथम प्रयोग के समान ही महत्वपूर्ण यह

पवन का उपयोग किया करते थे—डोंगी पर एक आदमी खूब पत्तियों वाली टहनी लेकर खड़ा हो जाता था, ताकि बहती हुई हवा के बल पर नाव को चलाया जा सके। उत्तरी अमरीका के इंडियन आदिवासियों की शानदार नौकाओं का ढंग यह होता था कि एक या दो आदमी लम्बी चौड़ी खाल या कंबल को फैलाकर नाव में खड़े हो जाते थे और दूसरा आदमी एक छोटा चप्पू लेकर नाव को नियंत्रित करता था।

यह समझना कठिन नहीं है कि भूमि पर परिवहन के शुरू होने के बहुत पहले ही जल परिवहन क्यों आरम्भ हुआ। जल आमतौर से समतल होता है और उस पर किसी प्रकार की रुकावट की संभावना नहीं। इसके अलावा, जमीन की तरह पानी पर जंगल, पहाड़, खाई या दलदल को पार करने की समस्या नहीं होती।

चमड़ा मढ़ी नाव में आदिम मानव

पानी पर घर्षण की समस्या कम से कम पैदा होती है, और उसका सामना करने के लिए बहुत ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ता। जमीन पर हवा परिवहन के लिए हवा को काबू में करने से कोई खास लाभ नहीं होता, लेकिन समुद्र पर किसी लट्ठे पर कपड़े का टुकड़ा तानकर पाल बनाई जा सकती है और उसके सहारे नाव के जहाज को चलाया जा सकता है—और यह बात हमारे पूर्वजों ने कुछ ही समय में मालूम कर ली थी। अग्नि के प्रथम प्रयोग के समान ही महत्त्वपूर्ण यह

खोज मानव द्वारा प्राकृतिक शक्तियों के उपयोग के समारम्भ की सूचक मानी जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा से चार हजार साल पहले मध्यपूर्व में नौका निर्माण का विकास धीमी, किन्तु सुस्थिर गति से आरम्भ हुआ। 3500 ई० पू० में मस्तूलों और पालों तथा इनके साथ ही चप्पुओं का भी काफी प्रयोग होने लगा था। चप्पू आमतौर से दासों से चलवाए जाते थे। एक अतिरिक्त चप्पू लेकर एक आदमी नाव या जहाज के पिछले हिस्से में बैठ जाता था और उसका दिशा निर्देश करता था। बाद में बड़े जहाज बनने पर इस अतिरिक्त चप्पू की जगह बड़ी पतवार काम में आने लगी, जिसे एक हत्थे से चलाया जाता था। फिर यह कोई बहुत अच्छी युक्ति नहीं थी, क्योंकि लहरों की चोट से यह आसानी से अपनी जगह से खिसक जाती थी। इन्हीं सब कारणों से जहाजों का आकार और दूरयात्रा की उनकी क्षमता सीमित रहती थी और उन्हें चलाने के लिए दासों को काम पर लगाना पड़ता था।

आरम्भ में अवश्य ही नौकानयन दजला, फरात और नील जैसी बड़ी नदियों तक ही सीमित रहा होगा। कहा जाता है कि मिस्रवासियों ने सबसे पहले खुले समुद्र में नौकानयन की शुरुआत की। परन्तु नाव बनाने के लिए वे जिस सामान का उपयोग करते थे, जैसे एकेशिया की लकड़ी या नरकुल आदि, इससे उनकी नौकाएं मजबूत बन पाती थीं। इसीलिए उन्होंने देवदार जैसी लकड़ी प्राप्त करने के लिए समुद्र के किनारे-किनारे लेबनान तक जाना शुरू किया। अच्छी लकड़ी से उन्होंने

बुनी हुई लकड़ी से बना असीरियाई बेड़ा

रूप का उपयोग किया करते थे—डोंगी पर एक आदमी लंबे पंखों वाली डंडी लेकर खड़ा हो जाता था, जबकि बहती हुई हवा के सहारे नाव को चलाया जा सके। इसकी जानकारी के इतिहास आदिवासियों की जानकार नौकाओं का रूप यह होता था कि एक या दो आदमी लम्बी चौड़ी नाव या बेड़ा को ढंककर साथ में खड़े हो जाते थे और दूसरा आदमी एक छोटा चप्पू लेकर नाव को नियंत्रित करता था।

यह समझना कठिन नहीं है कि भूमि पर परिवहन के शुरू होने के बहुत पहले ही जल परिवहन क्यों आरम्भ हुआ। जल आमतौर से समतल होता है और उस पर किसी प्रकार की रुकावट की संभावना नहीं। इसके अलावा, जमीन की तरह पानी पर जंगल, पहाड़, खाई या दलदल को पार करने की समस्या नहीं होती।

चमड़ा मढ़ी नाव में आदिम मानव

पानी पर घर्षण की समस्या कम से कम पैदा होती है, और उसका सामना करने के लिए बहुत ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ता। जमीन पर हवा परिवहन के लिए हवा को काबू में करने से कोई खास लाभ नहीं होता, लेकिन समुद्र पर किसी लट्ठे पर कपड़े का टुकड़ा तानकर पाल बनाई जा सकती है और उसके सहारे नाव के जहाज को चलाया जा सकता है—और यह बात हमारे पूर्वजों ने कुछ ही समय में मालूम कर ली थी। अग्नि के प्रथम प्रयोग के समान ही महत्त्वपूर्ण यह

खोज मानव द्वारा प्राकृतिक शक्तियों के उपयोग के समारम्भ की सूचक मानी जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा से चार हजार साल पहले मध्यपूर्व में नौका निर्माण का विकास धीमी, किन्तु सुस्थिर गति से आरम्भ हुआ। 3500 ई० पू० से मस्तूलों और पालों तथा इनके साथ ही चप्पुओं का भी काफी प्रयोग होने लगा था। चप्पू आमतौर से दासों से चलवाए जाते थे। एक अतिरिक्त चप्पू लेकर एक आदमी नाव या जहाज के पिछले हिस्से में बैठ जाता था और उसका दिशा निर्देश करता था। बाद में बड़े जहाज बनने पर इस अतिरिक्त चप्पू की जगह बड़ी पतवार काम में आने लगी, जिसे एक हत्थे से चलाया जाता था। फिर यह कोई बहुत अच्छी युक्ति नहीं थी, क्योंकि लहरों की चोट से यह आसानी से अपनी जगह से खिसक जाती थी। इन्हीं सब कारणों से जहाजों का आकार और दूरयात्रा की उनकी क्षमता सीमित रहती थी और उन्हें चलाने के लिए दासों को काम पर लगाना पड़ता था।

आरम्भ में अवश्य ही नौकानयन दजला, फरात और नील जैसी बड़ी नदियों तक ही सीमित रहा होगा। कहा जाता है कि मिस्रवासियों ने सबसे पहले खुले समुद्र में नौकानयन की शुरुआत की। परन्तु नाव बनाने के लिए वे जिस सामान का उपयोग करते थे, जैसे एकेशिया की लकड़ी या नरकुल आदि, इससे उनकी नौकाएं मजबूत बन पाती थीं। इसीलिए उन्होंने देवदारु जैसी लकड़ी प्राप्त करने के लिए समुद्र के किनारे-किनारे लेबनान तक जाना शुरू किया। अच्छी लकड़ी से उन्होंने

फूली हुई मशकों से बना असीरियाई बेड़ा

मिस्रवासियों के पालदार जहाज

थे, लेकिन उनकी मुख्य रुचि सैनिक क्षेत्र में थी। उनके जहाजों में चप्पू चलाने वाले दासों के बैठने का स्थान 130 से 165 फुट लम्बा और 16 से 17 फुट चौड़ा होता था जिसमें कई सौ दास एक के ऊपर एक दो, तीन या अनेक खड़ों में बैठकर चप्पू-चलाते रहते थे। फारसवासियों के विरुद्ध लड़े गए सलामीम के नौ-युद्ध जैसे युद्धों में दासों का कत्लेआम जैसा ही दृश्य उपस्थित होता था और सैकड़ों की तादाद में जजीरों से बंधे हुए दास जलते हुए जहाजों के साथ ही समुद्रतल में समा जाते थे।

रोम और कार्थेज की शत्रुता के कारण प्राचीन नौ-निर्माण में बड़ी तेजी से विकास हुआ। उस समय के एक औसत युद्धपोत में 200 से 230 तक आदमी काम करने वाले होते थे, जिनमे से 170 जहाज को खेने का काम करते थे। दासों को खुले में बैठकर चप्पू चलाने पड़ते थे, लेकिन सैनिक छत के नीचे जहाज के अगले और पिछले हिस्से मे तैनात होते थे। इन जहाजों में आमतौर से एक ही चौकोर पाल हुआ करती थी। युद्धपोतों के अलावा रोमनों ने भारी मालवाही जहाज और तेज चलने वाले जहाज भी बनाए थे, जो उनके साम्राज्य के दूर-दूर तक फैले सागरतटो तक मुसाफिरों और सामान को पहुंचाया करते थे। रोम के व्यापारी जहाज खासे बड़े, 500 से 1000 टन तक के होते थे और कभी-कभी तो 3000 टन तक के जहाज बनाए जाते थे। बाद में बने ऐसे ही भारी जहाज को एक मिस्री सूच्याकार स्तम्भ को रोम तक ढोने के काम में लाया गया था। स्तम्भ आज भी सैंट पीटर गिरजाघर के प्रांगण में स्थापित है। बाद में इस जहाज को बालू से भरकर टाइबर नदी के मुहाने पर खड़ा डुबा दिया गया ताकि ओस्तिया बन्दरगाह के सामने तरंग रोधक दीवारों के लिए नींव का काम दे सके। जब 1959 में ओस्तिया के समीप रोम का नया हवाई अड्डा बनाने के लिए खुदाई की गई तो ऐसे ही तीन जहाज खासी अच्छी हालत में जमीन में से निकाले थे। इनमें से प्रत्येक 130 फुट लम्बा है। रोमन सम्राटों के शाही बजड़े और हाउसबोट भी बड़े शानदार होते थे। 1928 में इतालियनों ने कैलीगुला के ऐसे ही दो शाही बजड़ों को बाहर निकालने के लिए नेमी झील का पानी सुखाया था। इन विशाल जहाजों में से एक 230 फुट लम्बा और 80 फुट चौड़ा था और उसके लंगर 13 फुट लम्बे थे। दुर्भाग्य से द्वितीय विश्व युद्ध में ये बजड़े नष्ट हो गए।

अन्य अनेक प्राचीन शिल्पों की भांति नौ-निर्माण शिल्प का भी आरम्भिक मध्य युग में ह्रास हुआ। परन्तु भूमध्य सागरीय परम्परा से बिलकुल अलग रहते हुए नौर्समैन या नार्वे के वाइकिंग लोगों ने बड़ी मजबूत किस्म के छोटे छोटे जहाज बनाए, और जब उनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि शिकार के बल पर गुजारा

करना कठिन हो गया तो वे ऐसे ही जहाजों में दुनिया की खोज में निकले थे। उन्होंने आइसलैंड से लेकर इटली तक पश्चिम यूरोप के सागरतटों पर आक्रमण किए और अनेक देशों में अपने राज्य कायम किए। वे ग्रीनलैंड भी पहुंचे और वहां से उन्होंने उत्तरी अमरीका तक धावा किया था। यह उस समय की बात है जब नौर्मन ड्यूक विलियम प्रथम ने इंगलैंड पर विजय प्राप्त की थी।

वाइकिंग लोगों ने अपने जहाजों से इतने दुस्साहसिक काम किए, उनके बारे में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता यदि ऐसा ही उनका एक जहाज 1863 में श्लेसविग के पीट के दलदल में धंसा हुआ न मिलता। ऐसा ही एक अन्य वाइकिंग जहाज 1880
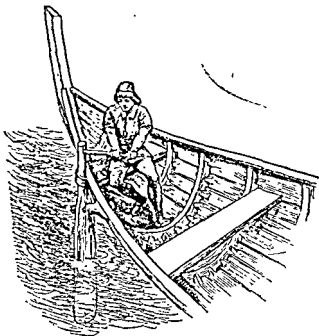
प्राचीन वाइकिंग जहाज को चलाने का ढंग

में ओसलो फोर्ड के किनारे गोक्सटाड में खोदकर निकाला गया था। दोनों जहाज सही सलामत हालत में थे और अब कील और ओसलो के संग्रहालयों में देखे जा

सकते हैं। ये लगभग 80 फुट लम्बे और 14 से 17 फुट तक चौड़े हैं। प्रत्येक में बीच का बना 40 फुट ऊंचा मस्तूल है और इनके दोनों ओर 16-16 चप्पू लगे हैं। हर चप्पू दो आदमियों द्वारा चलाया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक जहाज में केवल चप्पू चलाने वालों की संख्या 64 होती थी। चप्पू काफी लम्बे 25 से 40 फुट तक के होते थे और दोनों बाजुओं में छेदों में से बाहर निकले होते थे। चप्पू चलाने वालों की रक्षा के लिए दोनों ओर ढालों की कतारें लगी हुई थीं। पालें साधारण कनवास की चौकोर आकार की होती थीं, पतवार पिछले हिस्से में दायीं तरफ होती थी। वेयूक्स की प्रसिद्ध पिछकाई में अंकित एक समकालीन दृश्यावली में नार्मन आक्रमण का दृश्य अंकित किया गया है। इसमें विलियम के अनेक जहाजों को पालदार दिखाया गया है और उनमें से किसी में चप्पू के लिए छेद नहीं बने हैं।

जब ईसाई क्रूसेडरों या मुजाहिदों ने अपनी लम्बी यात्राएं आरम्भ कीं तो उन्हें पता चला कि चप्पू से चलाने वाले जहाजों की बजाय केवल पाल वाले जहाज ज्यादा तेज चलते हैं और अच्छा काम करते हैं। उदाहरणार्थ रिचर्ड क्यूर द लायन के जहाजी बेड़े के कुल 160 जहाजों में चप्पू वाले जहाज केवल 38 थे। इस समय अर्थात् 1200 के आसपास जहाजों में पतवार की जगह इस्तेमाल होने वाले मामूली चप्पू की जगह बढ़िया और लगभग आजकल जैसी मजबूत पतवार का प्रचलन भी आरम्भ हुआ।

परन्तु सागरयात्री मानव द्वारा महासागरों की वास्तविक विजय केवल तब आरम्भ हुई जब एक महत्त्वपूर्ण यंत्र का आविष्कार हुआ—हालांकि इन छह या सात शताब्दियों में इसके रूप में बहुत ज्यादा परिवर्तन हुआ है। फिर भी आज भी यह नौचालन का केन्द्रीय महत्त्व का यंत्र है—यह है नौचालकों का दिक्सूचक यंत्र या कुतुबनुमा। इस यंत्र का आरंभिक इतिहास अनिश्चित है, यद्यपि चीनी सूत्रों का कहना है कि इसका आविष्कार 2634 ई० पू० में हुआ था। वैसे ईसा के बाद तीसरी शताब्दी के अन्त में भी इसी किस्म के किसी यंत्र का पूर्वी एशिया में सामान्य उपयोग जारी था। कुछ समय तक यह भी माना जाता रहा कि इसके 1000 साल बाद मार्को पोलो अपनी यात्राओं से लौटते समय ऐसा ही एक यंत्र लाया था। परन्तु कुछ इतिहासकार जहाजियों के प्रथम कुतुबनुमा के आविष्कार का श्रेय चौदहवीं शताब्दी में हुए एक इतालवी शस्त्रनिर्माता फ्लेवीओ गियोजा को देते हैं—हालांकि यह तथ्य बहुत दिनों से लोगों को मालूम था कि पृथ्वी की अपनी चुम्बकीय शक्ति होती है तथा चुम्बक—आवेशित लोहे की सूई सदा उत्तर दिशा में संकेत करती है। गियोजा ने सिर्फ इतना किया कि ऐसी सूई को एक धुरे पर इस तरह रखा कि वह आसानी से घूम सके और उसे शीशे के ढक्कन वाले लकड़ी

के डिब्बे में बंद कर दिया। बाद में बत्तीस चिन्हों वाला एक गोल कार्ड घूमती हुई सूई के साथ और जोड़ दिया गया। अपने इस रूप में जहाजी कुतुबनुमा उन्नीसवीं सदी के अन्त तक काम में आती रही। बाद में 1870 के आसपास सर विलियम टाम्सन ने, जो बाद में लार्ड केविन के नाम से प्रसिद्ध हुए, इससे एक ऐसे यंत्र को आधुनिक विश्वसनीय रूप दिया जो जहाज के हिलने-डुलने पर भी स्थिर बना रहता है और जहाज के लोहे के कलपुर्जों के चुम्बकीय प्रभाव से मुक्त रहता है। अब इसमें एक भारी सूई की बजाय इस्पात की आठ पतली पट्टियां होती हैं जो रेशम के धागे से गोल कार्ड के वलय से बंधी रहती हैं। कुतुबनुमा की कटोरी में रेंडी का तेल भर दिया जाता है ताकि जहाज के हिलने डुलने का उस पर असर न पड़ सके तथा स्थाई रूप से चुम्बक—आवेपित इस्पात की छड़ ठीक बीच में कार्ड के नीचे लगा दी जाती है जो जहाज के अपने ऊर्ध्वाधर चुम्बकीय आकर्षण से उत्पन्न होनेवाली 'गति त्रुटि' को अपने आप ठीक कर देती है।

जिसे हम नौ-वास्तुकला या नौका निर्माण का तकनीकी शिल्प और सैद्धान्तिक विज्ञान मानते हैं, उसकी शुरुआत चौदहवीं शताब्दी में जहाजी कुतुबनुमा के आविष्कार के बाद ही हुई। पहले इटली इस क्षेत्र में आगे बढ़ा हुआ था, लेकिन बाद में हेनरी पंचम ने कई बड़े-बड़े जहाज बनवाए और इस तरह इंगलैंड यूरोप के नाविक राष्ट्रों में सबसे आगे निकल गया। पुर्तगाल और स्पेन उसके सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी थे। किसी अन्वेषण या खोज के उद्देश्य से आज तक हुई समुद्र यात्राओं में सबसे अधिक गौरवशाली है, कोलम्बस की समुद्री यात्रा, जो अविश्वसनीय रूप से छोटे तीन जहाजों के जरिये की गई थी। ये जहाज 100, 50 और 40 टन के थे। आज भी इतने छोटे आकार के आधुनिक जहाजों में से अटलांटिक महासागर पार करने की हिम्मत नहीं करेगा।

लगभग सौ साल बाद तक भी पालदार जहाज चप्पू वाले जहाजों की जगह नहीं ले सके। इनका प्रचलन अंग्रेजों द्वारा अपनी जलसेना के निर्माण के साथ हुआ जब यह देखा गया कि अंग्रेजी युद्धपोत चप्पू वाले भारी स्पेनी युद्धपोतों की अपेक्षा तेजी से चलते थे और उन्हें आसानी से घुमाया-फिराया भी जा सकता था। भारी स्पेनी जहाजों में चप्पू चलाने वालों की काफी बड़ी संख्या हुआ करती थी। युद्ध के समय बहुत से ऐसे स्पेनी जहाज ब्रिटेन के तट पर पहुंचने के पहले ही तूफान में नष्ट हो गए। इस प्रकार समुद्री यात्रा की थोड़ी-सी भी जानकारी रखने वाले व्यक्ति के लिए उस समय यह स्पष्ट हो गया कि अमरीका और पूर्वी एशिया के सुदूर सागर तटों की खोज की चुनौती को देखते हुए, अब चप्पू से चलने वाले जहाजों के दिन लद गए हैं।

उन्हीं दिनों यह भी जरूरी समझा गया कि महासागरों की यात्रा के लिए जाने वाले जहाजों में से कुछ को यदि व्यापारी जहाज बनाना है, तो उनके पेंदे और भी मजबूत बनाए जाने चाहिए। एक अन्य समस्या यह थी कि कुतुबनुमा जैसे सामान्य नौचालन यन्त्र समुद्र में देशान्तर रेखाओं का ठीक-ठीक पता बताने में असमर्थ थे। हालांकि अक्षांश रेखाओं के बारे में उनसे लगभग ठीक जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। जैसे ही जहाज का कप्तान अपने जहाज को तट से दूर गहरे समुद्र में ले जाता तो परिचित सागर तट की सामान्य विशेषताएं जैसे बन्दरगाह आकाशदीप आदि आंख से ओझल हो जाते थे और नौचालन की कठिनाइयां बढ़ने लगती थीं। एक बढ़िया और शुद्ध क्रोनोमीटर का आविष्कार ही इस समस्या का हल था। परन्तु इसी यन्त्र का आविष्कार सबसे अधिक कठिन सिद्ध हुआ। 1675 में चार्ल्स द्वितीय ने ग्रीनविच वेधशाला की स्थापना की जो अंग्रेज नाविकों के लिए समय निर्धारित करने में सहायक होती थी। परन्तु इसके चालीस साल बाद से ब्रिटिश सरकार को ऐसे आविष्कारों के लिए पुरस्कार की घोषणा करनी पड़ी, जो समुद्र यात्रा के समय जहाजों के लिए उपयोगी अच्छे समय-सूचक यन्त्र का आविष्कार कर सकते थे। पचास साल और बीत गए जब एक बढ़ई के लड़के जॉन हेल्सन को संसार का सबसे प्रसिद्ध समय-सूचक यन्त्र बनाने में सफलता प्राप्त हुई। 1761 में जमैका की एक यात्रा में इस यन्त्र का परीक्षण किया गया और पता चला कि अपनी छः सप्ताह की समुद्र यात्रा में वह पांच सेकण्ड से अधिक पीछे नहीं हुआ।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में पालदार जहाजों का आकार और उनकी रफ्तार बराबर बढ़ती गई और वे अधिक से अधिक सक्षम होते गए। एक मस्तूल वाले छोटे जहाज से लेकर चार मस्तूलों वाले बड़े जहाजों तक विभिन्न प्रकार के जहाज बने जो युद्ध और शान्ति काल की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। ऐसे सभी प्रकार के बने जहाजों को बनाने में ब्रिटेन सबसे आगे था। उसने 'ईस्ट इण्डिया मेन' जैसे भारी जहाज बनाए, तेज रफ्तार के लिए 'फ्रिगेट' नौकाएं बनाईं समुद्री डाकुओं से लड़ने लिए भिन्न प्रकार के मजबूत जहाज बनाए और पालदार जहाजों के के सिरमौर 'क्लिपर जहाज' का भी आविष्कार किया। यह लम्बा पतला, सुन्दर और तेज चलने वाला जहाज दक्षिण पूर्वी एशिया से इंगलैंड तक चाय पहुंचाने के काम आता था या ऊन उद्योग की सहायता करता था। 'क्लिपर जहाज' पचहत्तर साल बाद भाप से यह बीस समुद्री मील तक की रफ्तार पकड़ लेता था। ब्रिटेन को अपने प्रवासियों को आस्ट्रेलिया ले जाने के लिए भी तेज रफ्तार वाले जहाजों की जरूरत थी, और इस क्षेत्र में

अमरीका से उसकी होड़ खासी तगडी थी। सबसे अन्त में बने क्लिपर जहाजों में से एक 'क्यूटी सार्क' जिसे 1868 में लकड़ी और लोहे की मदद से बनाया गया, अब भी ग्रीनविच सूखे घाट पर सुरक्षित रखा हुआ है। जर्मन लोग तो इस शताब्दी के पहले दस वर्षों तक क्लिपर किस्म के पालदार जहाज बनाते रहे।

भाप की शक्ति से जहाज चलाने के प्रयास कई सौ साल पहले शुरू हुए थे। बताया जाता है कि 1583 में बार्सीलोना में ब्लास्को द गारे नामक व्यक्ति ने एक ऐसा ही जहाज बनाया था। इस पुस्तक माला के प्रथम खंड ऊर्जा की कहानी में हम बता चुके हैं कि किस प्रकार डेनिस पापा ने मारबर्ग से इगलैंड रवाना होते समय 1707 में अपनी पहिएदार चप्पुओं वाली नाव में एक पश्चाग्र भाप इंजन लगाने का विचार किया था। 1736 में एक अंग्रेज मैकेनिक जोनाथन हल्स ने एक खींचने वाली नाव का इंजन बनाने का पेटेंट लिया था, हालांकि वह कभी बना नहीं। 1770 में पेंसिलवानिया के लकास्टर स्थान में विलियम हेनरी नाम एक अमरीकी ने जिसने जेम्स वाट का इंजन देखा था, भाप-चालित नावों के माडल बनाने की कोशिश की। इन असफल प्रयोगों के देखने वालों में जान फिच नामक एक युवक भी था, उसने अपने मन में इस विचार को जमा लिया और सोलह साल बाद एक स्टीमबोट बना डाली जो तैरते हुए तख्तों की एक अन्तहीन चैन से चलती थी, बिलकुल जैसे कोई कैटरपिलर चलता है। एक-दूसरे माडल में उसने इनकी जगह छोटे चप्पू लगा दिए और इस प्रकार 7 मील प्रति घंटे की रफ्तार हासिल की। फिच ने किसी जेट में भाप की शक्ति को केन्द्रित करके उसके सहारे नाव चलाने का प्रस्ताव रखा। वास्तव में एक ऐसी नाव जेम्स रामसे ने 1793 में बनाई भी थी। वह पोटोमैक में 4 मील प्रति घंटा की रफ्तार से चली थी। परन्तु अन्य अधिकांश आविष्कर्ताओं को इसमें सन्देह नहीं था कि यदि नाव चलाने में भाप की शक्ति का उपयोग करना है तो इसके लिए चप्पू पहिये वाली नाव ही ठीक रहती है।

इसमें सन्देह नहीं कि एक स्काटिश मैकेनिक विलियम साइमिंग्टन ने ही म से पहली ऐसी भाप चालित नाव तैयार की थी जो ठीक ढंग से चल सकती थी। उसने एक अवकाश प्राप्त बैंकर पैट्रिक मिलर और एक अध्यापक टेलर के सा मिलकर इस प्रकार के प्रयोग आरम्भ किए। इन लोगों ने 1788 में एक स्टीबोट तैयार की और स्काटलैंड की डाल्स विंग्टन झील में उसका परीक्षण किय वह पांच मील प्रति घंटे की चाल से चली। लेकिन साइमिंग्टन के साथियों इससे सन्तोष नहीं हुआ। अनेक बाधाओं के होते हुए भी उसने अपना प्रयास ज

सार्मिगटन का जहाज 'चार्लोटी डंडास'
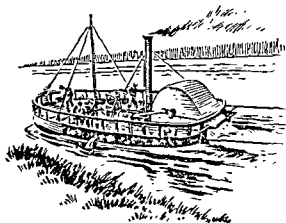
उन्हीं दिनों उसने 'चार्लोटी डंडास' को चलते हुए देखा और उसे स्टीमबोट के विचार ने बड़ा प्रभावित किया। फ्रांस के पहले पैनोरामा प्रदर्शन के लिए एक विशाल चित्र बनाने के लिए उसे पेरिस बुलाया गया तो उसने वहां फ्रांसीसी अधिकारियों को 'नाटिलस' नामक एक पनडुब्बी का निर्माण करने के लिए राजी कर लिया ताकि उसके जरिये पानी के भीतर से ब्रिटिश नौसेना पर हमला किया जा सके। उसकी इस योजना का बड़े उत्साह से स्वागत हुआ, हालांकि बात आगे नहीं बढ़ सकी, क्योंकि इंगलैंड के साथ लड़ाई बन्द हो गई थी। इसी प्रकार उसे अन्य आविष्कार 'टारपीडो' के निर्माण में भी सफलता नहीं मिल सकी। यह पानी के भीतर मार करने वाला एक स्वचालित प्रक्षेपास्त्र था, जिसे विशेष टारपीडो नौकाओं से दागा जा सकता था।

पेरिस में फुल्टन ने अमरीका राजदूत राबर्ट लिविंग्स्टन से गहरी दोस्ती पैदा कर ली और स्टीमबोट के सम्बन्ध में अपना विचार उसे बताया। लिविंग्स्टन ने उसकी सहायता करने का आश्वासन दिया। उन्होंने एक पुराना बोट इंजन खरीदा और उसे बीच में रखते हुए उसके आसपास एक छोटी-सी नाव बनाई। उन्होंने 1803 में सीन नदी में इसका परीक्षण किया, लेकिन नाव टूटकर दो टुकड़ों में बंट गई। एक दूसरी नाव बनाई गई, और फुल्टन ने नेपोलियन से मिलने की इजाजत मांगी। उस महान् नेताओं में अकादेमी के कुछ सदस्यों की

विपरीत रिपोर्ट से प्रभावित होकर फुल्टन से कहा, "तो तुम सिगार के धुएं से जहाज चलाना चाहते हो ?"

फिर भी फुल्टन और लिविंग्स्टन अपने प्रयोग में लगे रहे। उनके प्रयास काफी सफल थे, लेकिन साथ ही उनसे यह भी प्रकट होता था कि इसके लिए और अच्छे इंजन की जरूरत है। लिविंग्स्टन ने अमरीका सरकार से 15,000 डालर की सहायता प्राप्त कर ली। बोल्टन और वाट से 20 अश्वशक्ति का
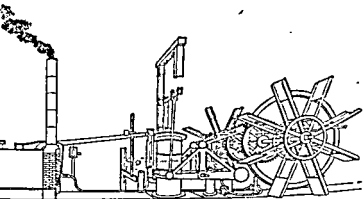
रावर्ट फुल्टन के जहाज 'क्लेरमोंट' का इंजन और चप्पूदार पहिए

एक इंजन खरीदा गया और न्यूयार्क में फुल्टन की डिजाइन पर पहला असली स्टीमशिप तैयार हुआ। 'क्लेरमोंट' नामक इस जहाज में 30 फुट ऊंची चिमनी भी थी और दोनों ओर बीच में बड़े बड़े चप्पूदार पहिए लगे थे। 180 टन के इस जहाज की लम्बाई 130 फुट थी। जब अगस्त 1807 में यह जहाज हडसन नदी से अपनी पहली यात्रा के लिए चला तो उसे देखने के लिए न्यूयार्क वासियों की भीड़ जमा हो गई और लोगों ने इसे 'फुल्टन्स फाली' (फुल्टन की मूर्खता) का नाम दिया।

'क्लेरमोंट' धुंआ उड़ाता हुआ हडसन नदी में आल्बेनी तक 150 मील की यात्रा पर गया। जाने में उसे 32 घंटे और आने में 30 घंटे का समय लगा और रास्ते में किसी प्रकार की दिक्कत नहीं हुई। एक पत्रकार ने हडसन नदी पर काम करने वाले मल्लाहों—के इस जहाज से संबंधित विचारों के बारे में लिखा, "हवा और ज्वार के पानी का रुख जहाज के पानी से विपरीत या फिर

भी उसे शान से आगे बढ़ते हुए देखकर मल्लाहों में हड़बड़ी मच गई। वे मुंह फाड़े उसकी ओर देखते थे और जब वह पास आ जाता था तो उसके इंजन और चप्पुओं की आवाज से घबराकर दूर भाग खड़े होते थे कुछ लोग अपने बजड़ों की छत के नीचे जा छिपते थे या अपनी नावों को किनारे से लगा देते थे। कुछ मल्लाहों ने तो लहरों पर शान से बढ़ते हुए और आग उगलते हुए इस राक्षस को देखकर भगवान से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करना शुरू कर दिया।

'क्लेरमोंट' न्यूयार्क से अल्बेनी तक वर्षों चलता रहा। फुल्टन ने हडसन नदी पर चलने के लिए दो ऐसे ही और जहाज बनाए। उसमें विभिन्न उद्देश्यों के लिए विभिन्न नौकाएं बनाईं तथा भाप से चलने वाला एक युद्धपोत, 'डेमोलोगस' भी बना था। इस युद्धपोत को 1815 में काम शुरू किया लेकिन तब तक फुल्टन का देहांत हो चुका था। इस समय तक अमरीका के पूर्वी समुद्र तट पर भाप चालित जहाजों और नौकाओं का खूब प्रचलन हो गया था, परन्तु यूरोप में अब भी व्यर्थ ही इनका विरोध जारी था। जब पहले 1812 में फुल्टन ने डेन्यूब नदी पर वियेना और उल्म के बीच जहाज सेवा जारी करने का प्रस्ताव रखा था, तो बवेरिया की सरकार ने अपने एक वरिष्ठ खदान इंजीनियर से इस सम्बन्ध में राय मांगी थी। हालांकि इस इंजीनियर ने बाद में पहली जर्मनी रेलवे लाइन का प्रस्ताव रखा लेकिन उस समय इसने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि इसके लिए कम-से-कम 240 अश्वशक्ति का इंजन जरूरी होगा और उसकी सारी जगह एक दिन के लिए आवश्यक ईंधन से ही भर जाएगी। यही नहीं वियेना से उल्म तक की यात्रा में 40 दिन लगेंगे।

परन्तु स्काटलैंड के निवासी इतने शंकालु नहीं थे। क्लाइड नदी पर 1812 में बना हेनरी बेल का 'कोमेट' नामक जहाज ब्रिटिश द्वीप समूहों के बीच चलने वाला पहला स्टीमशिप था। वह ग्लासगो और ग्रीनोक के बीच नियमित रूप से चलता था, इसके बाद तो स्काटलैंड में स्टीमशिप के उद्योग ने बड़ी तेजी से प्रगति की। टेम्स नदी पर चलने वाला स्टीम शिप मार्जरी (1814) भी स्काटलैंड का बना जहाज था। इसी तरह 1818 में आयरिश चैनेल पार करने वाला स्टीमर भी स्काटलैंड में ही बना था। एक अन्य ब्रिटिश जहाज 'डिफिएन्स' ने 1816 में सबसे पहला राइन नदी पर वाष्पचालित जहाज रानी की शुरुआत की। उसी साल 'लेडी आव द लेक' नामक जहाज ने एल्ब नदी, हेम्बर्ग और कक्सहेवन के बीच नियमित रूप से चलना शुरू किया।

परन्तु भाप की शक्ति के सहारे पहली बार अटलांटिक महासागर को पार करने का साहस एक अमरीकी जहाज ने किया। 'सैवाना' नामक एक पालदार

जहाज जिसमें एक सहायक भाप इंजन भी लगा था। मई 1819 में जार्जिया से रवाना हुआ और 25 दिन बाद लिवरपूल पहुंचा। यह अपने आप में एक रिकार्ड था क्योंकि सामान्य पालदार जहाजों को इस यात्रा में 32 से 40 दिन लग जाते थे। लगभग 8 साल बाद केवल भाप की शक्ति से चलने वाले जहाज 'क्यूराकाओ' ने समुद्र का विस्तार पार किया। यह लकड़ी का बना डच जहाज डोवर में तैयार हुआ था। इसे रोटरडम से वेस्टइंडीज पहुंचने में एक महीना लगा था।

फिर भी अभी यह शुरुआत ही थी और यूरोप और अमरीका के बीच उचित मूल्य की जहाजी यात्री सेवा के आरम्भ में अभी काफी देर थी। चप्पूदार पहियों वाले स्टीमर या पैडल स्टीमर बहुत अधिक ईंधन खर्च करते थे और इनमें खर्च भी ज्यादा बैठता था। इनके इंजन ज्यादा भारी नहीं बनाए जा सकते थे, इसलिए इनकी रफ्तार भी कम होती थी। इनके लकड़ी के पेंदे के टूटने का डर ही बना रहता था। लकड़ी को जितना ढोना होता है उतना ही उसे भारी होना चाहिए, तभी वह मजबूत मानी जा सकती है, लेकिन लोहा अपने से दूना भार ढो सकता है। इस्पात तो इससे भी ज्यादा भार सहन कर सकता है, लेकिन लोहे के जहाजों के बारे में बड़ी गलत फहमी फैली हुई थी और उस समय के विशेषज्ञों तक का विचार था कि लोहे का जहाज समुद्र तल में बैठ जाएगा। इसके अलावा उस समय तक लकड़ी के कुछ पैडल स्टीमर अटलांटिक पार की यात्राओं के लिए खासी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। ग्रेट वेस्टर्न रेलवे के निर्माता इसमवार्ड किंगडम ब्रूनेल ने, जो प्रसिद्ध इंजीनियर सर मार्क इसमबार्ड ब्रूनेल के पुत्र थे। 1830 में 'ग्रेट वेस्टर्न' नामक एक ऐसा ही जहाज बनाया था, जो काफी प्रसिद्ध हुआ। ब्रूनेल का विचार था कि नियमित स्टीम बोट सर्विस शुरू करके लंदन से ब्रिस्टल तक की रेलवे लाइन को न्यूयार्क तक बढ़ा दिया जाए। 1,340 टन वजन और 440 अश्व-शक्ति के इंजन जहाज 'ग्रेट वेस्टर्न' ने 1838 में एक दौड़ में केवल 15 दिन में अटलांटिक महासागर पार किया था जबकि उसके मुकाबले में 'सीरियस' नामक एक छोटे जहाज को जिसे एक अमरीकी ने इस अवसर के लिए किराए पर लिया था। तीन दिन का समय अधिक लगा। इस घटना के बहुत दिनों तक अटलांटिक के दोनों किनारों पर चर्चा हुई।

फिर भी लकड़ी के पैडल—स्टीमर के दिन अब गिने हुए थे। जहाज निर्माण मे लौह युग का आरम्भ लगभग उसी समय हुआ, जब पेचकस के आकार के पंखे या स्क्रू-प्रोपेलर का प्रचलन शुरू हुआ। सबसे पहले इस प्रकार के पंखे का विचार फ्रांसीसी अकादेमी के सदस्यों के सामने एक स्विस वैज्ञानिक डेनियल बर्नोली ने 1752 में रखा था। परन्तु इस प्रकार के स्क्रू को चलाने के योग्य इंजनों के अभाव
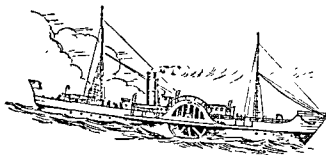
भाप इंजन और चप्पूदार पहियों से चलनेवाला एक आरंभिक जहाज

के कारण यह विचार कागज पर ही बना रहा। जान फिच ने स्क्रू-प्रोपेलर के साथ प्रयोग किया था, लेकिन उसकी डिजाइन ठीक नहीं थी। 1824 में एक फ्रांसीसी कैप्टेन डेलिसले ने प्रणोदन के एक नये प्रकार का सुझाव रखा, लेकिन उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

अन्त में 1828 में एक आस्ट्रियन वन अधिकारी जोसफ रसल ने ट्रीस्ट के एक जहाज निर्माता को एक ऐसी प्रयोगात्मक नौका बनाने के लिए राजी किया, जिसके पिछले हिस्से और पतवार के बीच में डेढ़ घुमाव का एक स्क्रू लगा हो और छः अश्वशक्ति का इंजन भी लगा हो। इस नौका का नाम 'सीवेटा' रखा गया और यह साढ़े सात नाट की रफ्तार से चलती थी। परन्तु इसके बायलर का एक ट्यूब फट गया और बन्दरगाह के पुलिस अधिकारियों ने ऐसी ही दूसरी नौका बनाने की अनुमति नहीं दी। रसल को इसके बाद कभी भी इस प्रयोग का अवसर नहीं मिला।

फिर भी सीवेटा ने अपनी संक्षिप्त आयु में ही यह सिद्ध कर दिखाया था कि स्क्रू-प्रोपेलर का सिद्धान्त सही है। यह एक विचित्र युक्ति है जिसका आरम्भ आर्किमिडीज के प्रसिद्ध स्क्रू से माना जाता है जो कई देशों में शताब्दियों तक पानी उठाने के एक यन्त्र के रूप से व्यापक रूप से प्रचलित रहा है। यह धातु या लकड़ी का बना एक वर्तुल होता है, जिसे एक घूमते हुए दण्ड पर लगा दिया जाता है और फिर उसे किसी तंग पात्र में फिट कर दिया जाता है। जब इस तरह का स्क्रू किसी नौका के पिछले हिस्से में आड़ा फिट करके घुमाया जाता है तो उससे पानी कटता है और नौका आगे बढ़ने लगती है, परन्तु व्यवहार में स्क्रू का प्रभाव इतना आसान नहीं होता, क्योंकि यह पानी में कुछ फिसलता भी है और इस
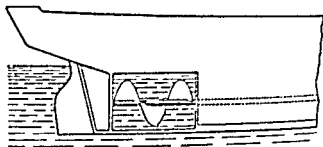
रसल की नौका 'फोबेटा' का डेढ़ पेंच का प्रोपेलर

कारण इसकी क्षमता कम हो जाती है। स्क्रू की इस खामी को दूर करने के लिए यह जरूरी है कि इसे आकार में बड़ा रखा जाए और इसकी रफ्तार भी खूब तेज हो। इसी कारण पहले यह जरूरी था कि खूब तेज रफ्तार में घूमने वाला भाप-चालित इंजन बनाया जाए। इसके बाद ही जहाज को चलाने के लिए एक नये साधन के रूप में स्क्रू प्रोपेलर का उपयोग किया जा सकता था।

रसल के छः साल बाद एक अंग्रेज कृषक फ्रांसिस पेटिट स्मिथ ने जिसे मशीनी काम-काज में रुचि थी, लकड़ी के एक स्क्रू प्रोपेलर के साथ प्रयोग करना शुरू किया। बाद में उसके काम की ओर नौसेना विभाग का ध्यान आकर्षित हुआ और उसे 237 टन का एक जहाज बनाने का अवसर दिया गया, इस जहाज का नाम उसने 'आर्किमिडीज' रखा। उसने यह मानकर कि रसल ने अपने स्क्रू में डेढ़ मोड़ रखकर पर्याप्त बुद्धिमानी का परिचय नहीं दिया था, अपने स्क्रू में उसने दो मोड़ रखे थे। 'आर्किमिडीज' 1838 में बनकर तैयार हुआ।

इसका पहला परीक्षण बड़ा सफल रहा। नौसेना विभाग ने चार से पांच समुद्री मील की रफ्तार चाही थी, जिसे इसने आरम्भ के थोड़ी देर बाद ही प्राप्त कर लिया था। परन्तु लगभग आधे घन्टे बाद अचानक जहाज के पिछले हिस्से में एक धक्का-सा लगा जैसे जहाज किसी ठोस वस्तु से टकरा गया हो। स्मिथ ने तुरन्त इंजन बन्द कर दिया और कारण जानने की कोशिश की। उसे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि एक टूटी हुई बोतल स्क्रू से टकरा गई थी और उसने उसका एक घुमाव तोड़ दिया था।

स्मिथ ने जहाज को उसकी अपनी ताकत के बल पर ही वापस बन्दरगाह में लाने का निश्चय किया और इंजन फिर से चालू कर दिया। उसने सोचा था कि अब जहाज की रफ्तार कम हो जाएगी और वह बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ेगा। टूटा

हुआ स्क्रू घूमने लगा और स्मिथ को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जहाज की रफ्तार बढ़ गई—उसने पांच, छः, आठ और यहां तक कि दस समुद्री मील की रफ्तार हासिल कर ली। स्मिथ के लिए एक अविश्वसनीय तथ्य था कि आधा स्क्रू पूरे स्क्रू की अपेक्षा जहाज को दूनी रफ्तार से चला सकता था, और वास्तव में यह एक तथ्य था।
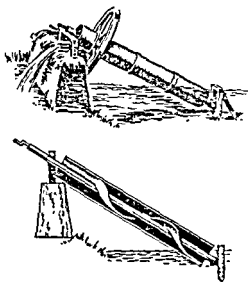
आर्किमिडीज का पानी उठाने वाला पेंच

'आर्किमिडीज' अपने जमाने का सबसे प्रसिद्ध जहाज हुआ। यह अधिक से अधिक तेरह समुद्री मील की रफ्तार से चल लेता था और पोर्ट्समाउथ से ओपोर्टो तक केवल 70 घंटे में पहुंच जाता था। इस तरह उसकी रफ्तार औसत ग्यारह नाट थी। स्मिथ ने अपनी विजय यात्रा के रूप में इस जहाज से ब्रिटिश द्वीप समूह का चक्कर लगाया। अब फ्रांस और अमरीका ने भी जल्दी-जल्दी अपने स्क्रू प्रोपेलर जहाज तैयार किए, और कुछ ही सालों में स्क्रू प्रोपेलर प्रणोदन के एक नये साधन के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। टूटी बोतल से अकस्मात हुई दुर्घटना ने स्मिथ को यह बता दिया कि केवल एक घुमाव का स्क्रू ही सबसे अच्छा होगा

है। बाद में ज्ञात हुआ कि और अच्छे नतीजे प्राप्त करने हैं तो स्क्रू के एक घुमाव को एक ठोस टुकड़े का रूप न देकर कई टुकड़ों में विभाजित कर देना चाहिए— दो से पांच पत्तियों तक में उसे विभाजित किया जा सकता है। और यही डिजाइन समुद्र में या हवा में जहां कहीं भी आज प्रोपेलरों की आवश्यकता होती है, वहां अब भी प्रयोग में आती है।

ब्रूनेल ने अपने जहाज 'ग्रेट ब्रिटेन' को, जो कि अपने समय का सबसे बड़ा स्टीमर माना जाने वाला था, स्क्रू प्रोपेलर से युक्त करने का निश्चय किया। 322 फुट लम्बा और 3000 टन भारी यह जहाज इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय था कि यह लोहे का बना था और ब्रूनेल विशेषज्ञों की चेतावनी के बावजूद यह सिद्ध कर दिखाना चाहता था कि लोहे का जहाज भी अच्छी तरह से तैर सकता है। 'ग्रेट ब्रिटेन' ने 1845 में लिवरपूल से न्यूयार्क की यात्रा साढ़े चौदह दिन में पूरी करके वास्तव में नौचालन के इतिहास में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। परन्तु एक साल बाद ही वह आयरिश तट पर टकराकर टूट गया। ब्रूनेल ने उसकी मरम्मत कराई और उसे फिर से यात्रा के योग्य बना लिया। इसके बाद इस जहाज ने काफी लम्बी आयु पाई और यह आस्ट्रेलिया की दौड़ लगाता रहा।

लेकिन इसके बाद ब्रूनेल ने अपने 'ग्रेट ईस्टर्न' जहाज की महत्त्वाकांक्षा की योजना बनाकर अपने सामर्थ्य से बाहर जाने की कोशिश की। अन्त में अभागा सिद्ध होने वाला यह जहाज 700 फुट लम्बा और 27,500 टन वजन का था। अपने आकार प्रकार में यह तत्कालीन तकनीकी विकास को देखते हुए अपने समय से आधी शताब्दी आगे की चीज थी। ब्रूनेल ने इसमें चौबीस फुट का एक प्रोपेलर लगाया और 58 फुट के पैडल पहिए भी लगाए तथा पांच चिमनियों वाले इंजनों के दो सैट भी बैठाए। इसके अलावा जरूरत के समय काम में आने की गरज से इसमें छः मस्तूलों पर पालें लगाई गईं, जिनमें 6,500 वर्गगज के लगभग कनवास लगा। इसके निर्माण के दौरान जो उतार-चढ़ाव आए और अन्त में दुर्घटनाओं और विलम्ब का जो सिलसिला चला, उससे ब्रूनेल का स्वास्थ्य चौपट हो गया। अन्त में 1859 के सितम्बर में यह जहाज टेम्स के अपने घाट से होली हैड के लिए रवाना हुआ। परन्तु अभी यह हेस्टिंग्स से बहुत ज्यादा दूर नहीं गया था कि इसमें एक विस्फोट हो गया और पांच आदमियों की जान जाती रही। कुछ दिनों बाद ब्रूनेल की भी मृत्यु हो गई। यह जहाज एक लाइनर के रूप में वैसे भी असफल ही सिद्ध होता, क्योंकि उन दिनों में इतने बड़े जहाज को सम्भालने की क्षमता किसी भी बंदरगाह में नहीं थी। अन्त में 1889 में तोड़े जाने के पहले तक

जहाज समुद्र में टेलीफोन के तार बिछाने के काम आता रहा।

बड़े और तेज चलने वाले समुद्री जहाजों के निर्माण की रुझान का कारण ल इंजीनियरों और जहाज मालिकों की यह इच्छा ही नहीं थी कि जहाज र्माण के शिल्प में एक-दूसरे को मात दी जाए। बल्कि अनेक सामाजिक और थिक विकास और आवश्यकताएं भी इसके लिए उत्तरदायी थीं। बहुत बड़ी या में लोग विशेष रूप से आप्रवासी महासागर के पार की यात्रा की प्रतीक्षा थे। पालदार जहाजों से यात्रा करने वाले गरीब मुसाफिरों को अवर्णनीय ठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। उन्हें लम्बी यात्रा के लिए अपना जन साथ ले जाना पड़ता था और अगर तूफानों के कारण यात्रा का समय गदा लम्बा हो जाता था, तो उन्हें भूखों मरना पड़ता था। बहुत से मुसाफिर इस रह अपनी जान से हाथ धो बैठते थे। इन लोगों को जहाज के नंगे पटरों पर र्फ लेटने भर की जगह मिलती थी। अपने फटे पुराने बिस्तरों पर अधिक मेती वस्तुओं के तकिए बनाकर इन्हें दिन गुजारने पड़ते थे। 29वीं सदी के ध्य के कुछ आंकड़े उपलब्ध हैं, जिनसे इन यात्रियों की करुण स्थिति का दाजा लगाया जा सकता है। 1853 में 9 सितम्बर से 21 अक्तूबर के बीच वभिन्न यूरोपीय बंदरगाहों से न्यूयार्क के लिए 16 पालदार जहाज रवाना हुए ., इनमें कुल 6,418 यात्री थे। जब जहाज न्यूयार्क पहुंचे तो इनमें से 334 ार्ग में ही यात्रा की कठिनाइयों या भूख के कारण अपने प्राण त्याग चुके थे।

जहाज निर्माण की आधारभूत वस्तु के रूप में लोहा अभी सदियों को मात ‍े भी नहीं पाया था कि इस्पात ने उसकी जगह ले ली। इस्पात का पहला जहाज 1863 में बना और इसके लगभग दस वर्ष बाद इस्पात पूरी तरह से लोहे की जगह प्रतिष्ठित हो गया। इसका कारण यह था कि एक अंग्रेज हेनरी बेसेमर ने इस्पात बनाने का एक नया सस्ता और कारगर तरीका ढूंढ निकाला था। बेसेमर बहुमुखी प्रतिभा वाला आविष्कर्त्ता था। और डाक टिकटों को रद्द करने की मोहर से लेकर कांसे के चूर्ण तक वह अपने अधिकांश आविष्कारों में सफल रहा था। क्रीमिया के युद्ध में अपने बनाए हुए एक घूमते हुए प्रक्षेपक का फ्रांसीसी अधिकारियों के सामने प्रदर्शन करने के बाद उसने अधिक सस्ते ढंग से इस्पात तैयार करने की विधि पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का विचार किया। उस समय इस्पात बहुत महंगा था। और एक टन इस्पात का मूल्य 50 पौंड या इससे अधिक होता था। उन दिनों कुछ औजार, चाकू, उस्तरे आदि ही इस्पात के बनते थे, तथा इंजन, जहाज, पुल आदि पिटे लोहे से बनाए जाते थे। इस्पात 'फफोरे वाली' विधि से पिटवां लोहे से तैयार किया जाता था। पिटवां लोहा

स्वीडन से 15 पौंड प्रति टन के भाव से मंगवाया जाता था। इस विधि के अनुसार लोहे की छड़ों को लकड़ी के कोयले से भरे पत्थर के डिब्बों में रखकर कई दिनों तक गरमाया जाता था, जिससे कि कोयले के कार्बन का कुछ अंश निकलकर लोहे में चला जाए। इससे कार्बनिक आक्साइड गैस निकलती थी, जो पिघली हुई धातु को फुलाकर उसमें फफोले जैसा पैदा कर देती थी। इसके बाद इन छड़ों को तोड़ कर छोटे-छोटे टुकड़े कर लिए जाते थे और फिर उन्हें पिघलाकर 60 पौंड के टुकड़ों में ढाल लिया जाता था।

बेसेमर चाहते थे कि सस्ते और रद्दी कच्चे लोहे को उसी समय पिटवाँ लोहे में बदल लिया जाए, जब कि वह पिघली हुई हालत में हो तथा उसे इसी पिघली हुई हालत में काफी समय तक रखा जाए ताकि उसे सांचों में ढाला जा सके। लेकिन ऐसा करते समय किसी प्रकार के ईंधन की जरूरत न हो। इसके लिए उन्होंने हवा की तेज फुहारों को धातु में से गुजरने की व्यवस्था की, जिससे कि कार्बन, फास्फोरस, सिलिकन, गंधक आदि उसकी अशुद्धियों का आक्सीकरण हो सके। इस विधि से जो तीव्र ऊष्मा पैदा होती है, उसके कारण धातु का तापमान इस्पात के गलनांक (1500 अंश सेंटीग्रेड) से भी ऊपर पहुंच जाता है। अपनी इस विधि के लिए उन्होंने अग्निसह ईंटों के अस्तरवाला एक बहुत बड़ा भभका बनाया और उसे एक धुरे पर चढ़ा दिया ताकि आसानी से उसे उलटा जा सके—इस प्रकार 'बेसेमर कन्वर्टर' या परिवर्तक का जन्म हुआ।

उनका बड़े पैमाने पर किया गया पहला प्रयोग पूर्ण सफल रहा। बाद में उन्होंने अपने संस्मरणों में लिखा, "अब मुझे इसका अकाट्य प्रमाण मिल चुका था कि आधे घंटे के समय में ही पिघले हुए कच्चे लोहे का तापमान बिना किसी बाहरी जलन शील पदार्थ की सहायता के इतना अधिक बढ़ाया जा सकता है जितना कि इसके पहले किसी को ज्ञात नहीं था। इसके साथ ही उसे बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के अपने कार्बन और सिलिकन जैसे तत्त्वों से भी मुक्त किया जा सकता है। इसके असली मतलब को,इसके द्वारा संसार के सभी लोहा निर्माता क्षेत्रों में होने वाली क्रांति को मैं चमकते हुए बोझ पिंडों के प्रकाश में अपनी कल्पना की आंख से स्पष्ट देख रहा था।"

बेसेमर का कथन सही था। निश्चय ही अपने-आप में यह एक बहुत बड़ी क्रांति थी—छः दिनों की बजाय केवल आधे घंटे में और वह भी अतिरिक्त ईंधन के बिना और केवल तीन पौंड प्रति टन के खर्च में ही कच्चे लोहे से प्रथम कोटि का इस्पात तैयार हो सकता था। 1856 के उस दिन से जब उन्होंने पहला इस्पात का लोहपिंड या इंगोट तैयार किया था, इस्पात का उपयोग इंजीनियरी

था। इसमें पारसन्स ने टर्बीनिया नामक अपनी एक छोटी-सी नौका को बड़ी सफाई के साथ प्रदर्शन के लिए खड़े युद्धपोतों, विध्वंसकों और अन्य बड़े जहाजों के बीच से निकाल लिया। यहां तक कि सेनाध्यक्ष ने उसको पकड़ने के लिए जो नौसैनिक नौका भेजी, वह भी उसका मुकाबला नहीं कर सकी। सौ फुट लम्बी और 44 टन वजन वाली टर्बीनिया 35 नाट की रफ्तार से वहां से निकल भागी—जबकि सबसे तेज चलने वाला विध्वंसक भी 27 नाट से ज्यादा तेज नहीं चल सकता था।

नौसेना की परेड में पारसन्स ने जो कलाबाजी दिखाई थी, उससे प्रभावित होकर नौसेना विभाग ने उनको दो विध्वंसक जहाजों में भाप टरबाइन में लगाने का काम सौंपा। ये टरबाइनें अपने समय के सबसे बढ़िया पश्चाग्र भाप इंजनों की तुलना में कहीं ज्यादा ताकतवर थीं। परन्तु दोनों ही विध्वंसकों को दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा। उनमें से एक तो घनी धुंध के कारण दुर्घटनाग्रस्त हो गया और दूसरा समुद्र के बीच में ही दो टुकड़ों में टूट गया, जिससे काफी बड़ी संख्या में लोग हताहत हुए। पारसन्स के शत्रुओं ने आरोप लगाया कि इन दुर्घटनाओं का मुख्य कारण भाप-टरबाइन है। इससे पारसन्स को खासी परेशानी का सामना करना पड़ा। लेकिन सभी प्रकार के युद्धपोतों में भाप-टरबाइन का उपयोग आरम्भ होने में ज्यादा समय नहीं लगा। 1905 के बाद से तो ब्रिटिश नौसेना विभाग ने पश्चाग्र इंजनों का उपयोग बिलकुल बन्द कर दिया।

इस बीच पहला टरबाइन चालित सवारी जहाज 1902 में क्लाइड नदी में चालू हुआ। यह किंग एडवर्ड नामक एक छोटा जहाज था। इसने पूरे पचास साल काम किया जो किसी जहाज के लिए उस समय तक एक खासी बड़ी बात थी। 1903 में एमेराल्ड नामक पहले टरबाइन जहाज में अटलांटिक महासागर पार किया। 1906 में कुनार्ड द्वारा निर्मित दो बड़े यात्री जहाज लूसीटानिया और मारीटानिया चालू हुए जिनमें से प्रत्येक में कुल 70,000 अश्व-शक्ति की चार टरबाइनें लगी थीं। कुछ साल बाद पारसन्स ने रफ्तार को कम करने वाली गियरिंग का भी आविष्कार कर लिया। जिसकी वजह से छोटे-छोटे मालवाही जहाज भी टरबाइन इंजनों से युक्त किए जा सकते थे।

तेल से चलने वाले टरबाइन यात्री जहाज प्रथम विश्वयुद्ध के पहले से चल रहे हैं और इनकी जगह नौ-प्रणोदन के बिलकुल नये प्रकार के रूप में अभी परमाणु शक्ति को ही विकसित करके सागर-परिवहन के क्षेत्र में लागू किया जा सकेगा। भार खींचने वाली नौकाओं, बजरों और उन अन्य यात्री जहाजों के लिए डीज़ल इंजन ही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है जिनमें कुछ भी अश्व-शक्ति में अधिक की आवश्यकता नहीं पड़ती। यहां यह उल्लेखनीय है कि नवीन [illegible]-

हिम क्षेत्र को भी नीचे से ही पार करते हुए सीधे अटलांटिक महासागर में प्रवेश किया था।

यह अद्वितीय यात्रा अपने-आप में एक अलग-अलग उपलब्धि के अलावा भी बहुत कुछ थी। इसने यह सिद्ध कर दिखाया कि अगर सतही जहाजों की जगह पनडुब्बियों का प्रयोग किया जाए और प्रचलित शक्ति की जगह जहाज चलाने के लिए परमाणु शक्ति का उपयोग किया जाए तो यूरोप और दक्षिण पूर्वी एशिया के बीच के व्यापारिक मार्ग की दूरी को आधा किया जा सकता है। पनडुब्बी को एक तेलवाही टैंकर या मालवाही जहाज अथवा यात्री जहाज के रूप में इस्तेमाल करने की समस्या पर विचार विमर्श[1] होने लगा। समुद्र की सतह पर चलने वाले जहाज को जल और वातावरण, इन दो तत्वों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। आंधियों, लहरों और धाराओं के कारण जहाज की गति पर प्रभाव पड़ता है और बहुत सावधानी से की गई गणनाएं भी ऐसी स्थिति में प्रायः गलत सिद्ध हो जाती हैं। जबकि समुद्र की सतह के नीचे गहराई में कोई भी जहाज तूफानों और ऊंची तरंगों आदि के प्रभाव से बचा रहता है। गहराई में वह बिना किसी बाधा के बहुत आराम से चल सकता है तथा गहराई में बहने वाली समुद्री धाराओं जैसी कुछ बाधाओं का बड़ी आसानी से पहले से हिसाब लगाया जा सकता है (हालांकि इस क्षेत्र में अभी काफी शोध होना बाकी है)। समान इंजन-शक्ति प्राप्त होने पर एक पनडुब्बी उसी आकार के एक सतही जहाज की तुलना में दोगुनी से भी ज्यादा तेज रफ्तार से चल सकती है। या, इसे दूसरे ढंग से कहा जाए तो 80,000 टन के एक यात्री जहाज को चालीस नाट की गति से यात्रा करने के लिए ग्यारह लाख अश्व-शक्ति के बराबर इंजन शक्ति की आवश्यकता होगी। जबकि इतने ही वजन की एक पनडुब्बी को केवल तीन लाख अश्व-शक्ति की आवश्यकता होगी।

इंजीनियरों के मन में इस संबंध में काफी दिनों से विचार चलता रहा है, परन्तु प्रचलित इंजनों की सहायता से पानी के नीचे की यात्रा करना बहुत अधिक खर्चीला और कठिन भी होगा, क्योंकि इन इंजनों को काफी बड़ी मात्रा में हवा की जरूरत होती है। जबकि परमाणु भट्टियों को हवा की जरूरत नहीं होती। इसलिए परमाणु शक्ति के विकास के साथ ही व्यावसायिक पनडुब्बी परि-

1. सबसे पहली मालवाही पनडुब्बी जर्मनी ने 1916 में मित्र राष्ट्रों की घेराबंदी को तोड़ने के उद्देश्य से बनाई थी। यह पनडुब्बी अमरीका के लिए कच्चा माल पहुंचाती थी। इसने अमरीका के युद्ध में प्रवेश करने के पहले अटलांटिक महासागर को कई बार सफलतापूर्वक पार किया था।

जहाज को चलाने का खर्च मात्र टरबाइन जहाज की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, लेकिन इसकी यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों से अन्य देशों के परमाणु जहाज बनाने वाले डिजाइनकारों को मार्ग निर्देशन प्राप्त हुआ है, और साथ ही एक चेतावनी भी मिली और वह यह कि यह इतना ज्यादा खर्चीला सिद्ध हुआ कि 1967 में इसका उपयोग बन्द कर दिया गया।

जर्मनी ने 1968 में 17,000 टन वजन का एक परमाणु चालित अन्वेषी जहाज 'ओट्टोहान' चालू किया। यह अपना खर्च चलाने के लिए कच्चा लोहा ढोता है और साल भर में 35 लाख पौंड कमाता है। इसका दाबानुकूलित जल रिएक्टर 38 मेगावाट ताप ऊर्जा उत्पन्न करता है। इसके और 'सॅवाना' के कार्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 50,000 टन से कम वजन के परमाणु चालित जहाजों का चलाना खर्च की दृष्टि से सस्ता नहीं हो सकता।

परमाणु ऊर्जा का नौचालन के लिए प्रयोग करने की दृष्टि से एक सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसके लिए आवश्यक मशीनों का आधार और भार बहुत ज्यादा होता है। इसलिए छोटे जहाजों में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। परमाणु भट्टी को मजबूत दाब वाले किसी पात्र में रखना पड़ता है और उसके हानिकर विकिरण को बाहर निकलकर फैलने से रोकने के लिए उसे भारी जैव रक्षात्मक आवरणों से ढकना जरूरी हो जाता है। भट्टी की ऊष्मा को ऊष्मा विनिमयित्रों तक पहुंचना होता है, जहां उससे भाप तैयार होती है जो टरबाइनों में जाती है। बहुत अधिक भार होने के कारण इस मशीनरी को अधिकांश सामान्य शक्ति चालित आधुनिक जहाजों की भांति पीछे नहीं, बल्कि जहाज के ठीक बीच में रखना पड़ता है।

लेकिन भविष्य में इस दिशा में एक और विकास हो सकता है जो अनेक जहाज निर्माता इंजीनियरों को स्वाभाविक और तर्कसंगत प्रतीत होता है—वह यह कि जिस प्रकार रेलगाड़ी में इंजन और डिब्बे अलग-अलग होते हैं, इसी प्रकार शक्ति उत्पादन यूनिट को जहाज से अलग रखा जाए। इसका तात्पर्य यह है कि जहाज को चलाने वाली प्रणोदक मशीनरी को जहाज से अलग एक अन्य परमाणिक नौका में रखा जाए, इंजनहीन यात्री या मालवाहक जहाजों को खींचकर गंतव्य स्थानों को ले जा सके, तो इन खींचने वाली नौकाओं को बराबर चालू रखा जा सकता है (इससे परमाणु भट्टी को चलाना न केवल सस्ता, बल्कि अधिक सुरक्षात्मक भी सिद्ध होगा,) और ये यात्रा के अन्त में गंतव्य स्थान पर जहाज को पहुंचा कर तुरन्त किसी दूसरे जहाज को खींचते हुए नयी यात्रा पर निकल सकती है। इस तरह इन्हें माल के उतारने और चढ़ाने की प्रतीक्षा में

बाहर निकलती रहती है। एक मजबूत लचीला आवरण इस हवा को जहाज के नीचे गद्दे के रूप में बनाए रखता है, और उसके सहारे जहाज पानी, बर्फ या जमीन से छह फुट ऊपर ही टंगा रहता है। यह क्रिया उस प्राकृतिक चमत्कार की वजह से और भी सरल हो जाती है जिससे विमान चालक लोग 'भूमि प्रभाव' के रूप में भली-भांति परिचित होते हैं। इसकी वजह से विमान जमीन को छूने के पहले जमीन से लगभग एक फुट ऊपर बना रहता है। इसी प्रकार भूमि प्रभाव के कारण ही हेलीकोप्टर को जमीन के पास कुछ ऊपर बनाए रखने की अपेक्षा चौथाई ताकत की ही जरूरत पड़ती है।

इन कारणों से होवर क्राफ्ट सही माने में विमान नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसकी क्रिया के लिए किसी सतह, पानी या जमीन का होना जरूरी है, जिसके ऊपर टंगा हुआ यह चल सकता है। यह अधिक ऊंचा नहीं उड़ सकता। इसके अलावा यह ऊर्ध्वाधर उठान वाला यंत्र नहीं है, जिसमें हल्के से जहाज को उठाने के लिए भी शक्तिशाली इंजनों की आवश्यकता होती है।

जब 1959 की गर्मियों में पूरे आकार के 4 टन वजनी होवरक्राफ्ट का परीक्षण किया गया तो बड़ी सनसनी फैली। 25-30 नाट की रफ्तार से चलने वाला यह जहाज जब समुद्र के तट पर चढ़ आया और बालू के ढेरों पर से गुजरता हुआ एक सड़क के बीच में जा बैठा तो दर्शकों की भीड़ को यह विश्वास हो गया कि अब परिवहन के एक बिलकुल ही नये और विचित्र साधन का जन्म हो गया है (सैनिक प्रेक्षकों ने निश्चय ही इसमें जवानों और हथियारों को ढोने के एक नये वाहन के दर्शन किए)। बाद में और भी बड़े नमूनों का ब्रिटेन के सागर तटों पर परीक्षण किया गया और 1968 में इंग्लिश चैनल के पार एक नियमित होवर क्राफ्ट सेवा की शुरूआत हो गई। इनमें से प्रत्येक जहाज 250 यात्रियों और 30 मोटर कारों को लेकर 60-70 नाट की रफ्तार से 10 फुट ऊंची समुद्री लहरों को भी आसानी से पार कर सकता है।

इस नये आविष्कार का तात्पर्य और इसकी संभावनाएं आरम्भ से ही स्पष्ट थी। जैसा कि चैनल को पार करने से सिद्ध हुआ समुद्र की विशाल लहरों से इसके लिए कोई समस्या पैदा नहीं होती। अगर जहाज को काफी बड़ा बनाया जाए और काफी तेजी से चलाया जाए तो तरंगों पर लुढ़कते हुए जहाज की भांति इसमें उछलने और गिरने जैसी कोई अप्रिय गति की भी संभावना नहीं है। अन्य अनेक देशों ने काकरेल के इस आविष्कार से प्रेरणा ली और इसमें अपने ढंग के कुछ सुधार भी किए। स्विस लोगों ने ऐसे विशाल होवर क्राफ्ट बनाने का सुझाव प्रस्तुत किया जो 3,50,000 टन भारी हो और विशाल सागरों को 8 फुट की

: जार्ज स्टेफेंसन

:15 सितम्बर 1830 में लिवरपुल और मानचेस्टर के मध्य रेल सेवा का उद्घाटन
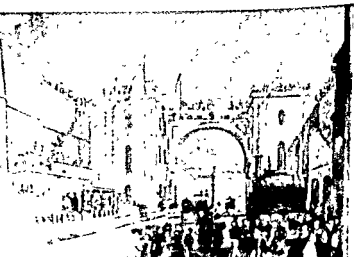
पर : जार्ज स्टेफेंसन
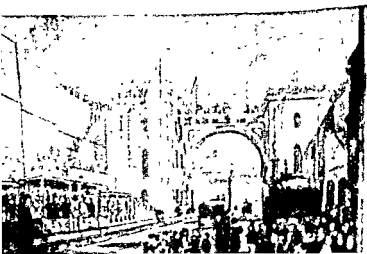
चे :15 सितम्बर 1830 में लिवरपुल और मानचेस्टर के मध्य रेल सेवा का उद्घाटन

बकिंघमशायर के स्टोक पोजस के एक गिरजाघर की खिड़की, जिसमें एक आदमी को साइकल जैसी मशीन पर सवार दिखाया गया है। इस चित्र पर 1642 की तिथि पड़ी है। चित्र निर्माता का नाम अज्ञात है।
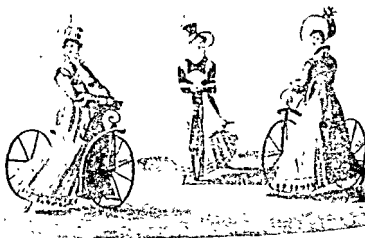
बकिंघमशायर के स्टोक पोजेज के एक गिरजाघर की खिड़की, जिसमें एक आदमी को साइकल जैसी मशीन पर सवार दिखाया गया है। इस चित्र पर 1642 की तिथि पड़ी है। लेकिन निर्माता का नाम अज्ञात है।
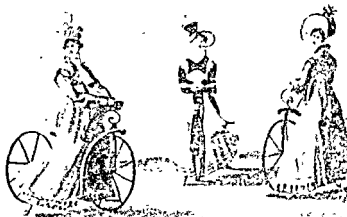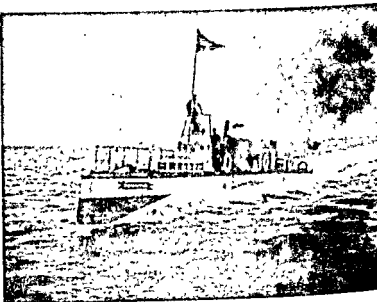
ऊपर : पारसन का 'टरबाइनिया', पहला भाप—टरबाइन जहाज जो 1897 में अपने परीक्षण के समय 34½ नॉट चला।

नीचे : 'होवर क्राफ्ट' का आरंभिक रूप, सोलेंट पर 1959 में अपने परीक्षण के दौरान।

ऊपर : पारसन का 'टर-
अपने परीक्षण के द
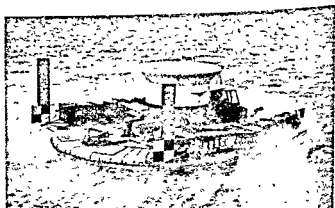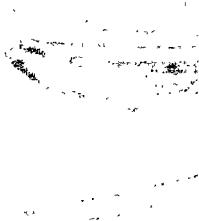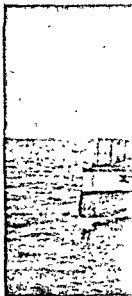
नीचे : 'होवर क्राफ्ट' क
दौरान ।
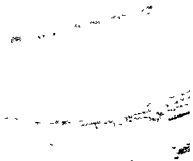
पर चलते हुए 100 मील प्रति घंटा या इससे भी अधिक की रफ्तार से र सकें। ब्रिटिश डिजाइनरों ने कल्पना की ऐसे जहाज उन देशों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, जहां संचार के साधनों का ठीक विकास नहीं हो है, जैसे उत्तरी कनाडा, मध्य आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और भारत। इन देशों 0 से 100 टन के होवरक्राफ्ट रेगिस्तानों, खदकों और नदियों के ऊपर से और सवारियों को बड़ी आसानी से ढो सकते हैं। वास्तव में, परिवहन के एकदम नवीन साधन का महत्व धनी और उद्योगप्रधान देशों की अपेक्षा कासशील देशों के लिए कहीं अधिक है। जहां परिवहन का प्रश्न कई बार जीवन र मरण का प्रश्न बन जाता है, वहां ऐसा वाहन बड़ा उपयोगी सिद्ध हो कता है जिसे न तो सड़कों और बन्दरगाहों की जरूरत है और न रेल की पटरियों और हवाई अड्डों की। 1968 में रीयो नीग्रो और ओरिनोको अभियानों में भारी होवरक्राफ्ट अन्वेषकों के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए थे।

अमरीकी डिजाइनकार ऐसी होवर रेलवे पर काम कर रहे हैं जो पटरियों (या मोनोरेल) को छूए बिना हवा की एक पतली गद्दी पर 300 मी० प्रति घंटा की गति से चल सकेगी, अथवा इस्पात के एक ट्यूब में 400 मी० प्रति घंटा की रफ्तार प्राप्त कर सकेगी। फ्रांसीसी इंजीनियर भी 'एयर ट्रेन' या हवा रेल के साथ ही 'हवावस' पर भी काम कर रहे हैं जो अपनी पटरी पर वायु के चूषण के बल पर टंगी रहेंगी। काकरेल ने स्वयं 1968 में कहा था कि मुझे आशा है कि होवरक्राफ्ट में उपयोग के लिए कोई हल्का परमाणु शक्ति इंजन बनाया जा सकेगा।

जहां तक सागर परिवहन का प्रश्न है, कम दूर की यात्राओं के लिए अब 'हाइड्रोफोएल' नौका होवरक्राफ्ट को भी चुनौती दे रही है। यह वास्तव में होवरक्राफ्ट से भी पहले की चीज है। इस शताब्दी के आरम्भ में एक इतालवी इंजीनियर एनरीको फोर्लानिनी ने हाइड्रोफोएल नौका के एक नमूने का परीक्षण मैग्योरे झील पर किया था, और अपनी नौका के पिछले हिस्से को पानी से बिलकुल बाहर उठाते हुए 38 नाट की रफ्तार प्राप्त की थी। इसमें केवल 75 अश्वशक्ति का इंजन लगा था। उसे यह सफलता डैनों के आकार की पत्तियों के बल पर मिली थी। अमरीका और जर्मनी में इसमें और भी विकास किया गया है। 1960 में जापान और रूस ने भी अपनी बड़ी-बड़ी यात्रीवाही 'हाइड्रोफोएल' नौकाएं बना लीं। रूस में तो इन नौकाओं का उपयोग नदियों और झीलों को पार करने के लिए किया है। वे रूसी नौकाएं 300 यात्रियों

को 50 नाट की रफ्तार से चलते हुए और बिना दोबारा ईंधन लिए हुए 450 मील तक आसानी से ले जाती है। हाइड्रोफ़ोइल नौका को डीजल इंजन या विमान के जेट इंजन से चलाया जा सकता है। ये भी उन क्षेत्रों में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं, जहाँ यातायात के सामान्य साधनों का अभाव है।

5
उड़ान

"क्या हवा में ऊपर उठने, उड़ने और तैरने की इच्छा से भी अधिक मूर्खता-पूर्ण और हास्यास्पद कोई और बात हो सकती है?" एक विज्ञान-लेखक ने अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रश्न किया था और मोंटगोल्फियेर बंधुओं द्वारा एक गुब्बारे के सहारे हवा में ऊपर उठने की घटना के साल भर पहले 1782 में एक फ्रांसीसी ज्योतिषी जोजफ ललादे ने, जो फ्रांसीसी अकादमी का सदस्य और माना हुआ विद्वान् था, अपने एक ग्रन्थ में घोषणा की थी कि ऐसा कोई साधन नहीं हो सकता जिसके सहारे मनुष्य हवा में ऊपर उठ सके और पृथ्वी के ऊपर सैर सके। असल में वह भी उसी बात को दोहरा रहा था, जिसे उस समय के बहुसंख्यक वैज्ञानिक एक अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार कर चुके थे।

इतना होने पर भी पक्षियों के हवा में उड़ने का रहस्यमय प्रमाण हर आदमी की आंखों के सामने था। आखिर पक्षी कैसे उड़ लेते हैं? मनुष्य क्यों उनकी नकल नहीं कर सकता? लोग प्रश्न करते थे। लेकिन धर्मभीरुओं का कहना था, "अगर ईश्वर चाहता कि हम उड़ें तो उसने अवश्य हमें पंख दिए होते।" फिर भी मनुष्य के मन में कहीं यह विश्वास छिपा हुआ था कि एक दिन वह जरूर उड़ सकेगा। स्वप्नों में वह पक्षियों की तरह उड़ता था। उसके पुराणों और परी-कथाओं में ऐसे मनुष्यों और देवताओं की कहानियां मौजूद थीं जो हवा में उड़ कर कहीं भी पहुंच सकते थे। और आदमी सोचता था कि अगर किसी तरह उड़ान का रहस्यमय सिद्धान्त उसे मालूम हो जाए तो वह भी किसी उड़नखटोले पर, जादुई कालीन पर बैठकर हवा में सैर कर सकता है।

अन्य क्षेत्रों की भांति वैमानिकी के क्षेत्र में भी वैज्ञानिक-शोध का काम यूरोपीय पुनरुत्थान युग में आरम्भ हुआ और यहां भी महान विचारक लियोनार्दो दा विंची एक महान व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने आते हैं। इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करने के प्रयास में कि पक्षी क्यों और कैसे उड़ पाते हैं, दा विंची ने अनेक गणनाएं कीं, रेखाचित्र बनाए तथा स्थिर और मुड़ने वाले पंख

लगाकर कुछ उड़न-यन्त्रों के नमूने भी बनाए। उन्होंने कम से कम सही रूप में हेलीकोप्टर और हवाई छतरी का भी आविष्कार किया था। परन्तु जैसा कि हमें मालूम है, दुर्भाग्यवश उनकी प्रसिद्ध नोट-बुकें अज्ञात ही रहीं और अठारहवीं सदी के अंत में ही कहीं जा कर उनका पता लग सका। दा विंची का विश्वास था कि मनुष्य अपनी बनाई हुई कुछ मशीनों की सहायता से हवा में ऊपर उड़ सकता है। यही सिद्धान्त आगे चलकर 'हवा-से-भारी' उड़ान के रूप में प्रसिद्ध हुआ। परन्तु धीरे-धीरे 'हवा-से-हल्की' उड़ान का एक अन्य सिद्धान्त भी लोगों का ध्यान आकर्षित करने लगा।
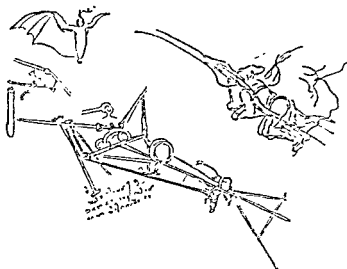
लियोनार्दो द्वारा एक उड़नकल के लिए बनाए गए रेखाचित्र

ब्रेसिया के जेसुइट पादरी फ्रांसिस्को द लाना इस विचार का सर्वप्रथम विकास करने वालों में से एक था। 1670 में लिखी गयी अपनी एक पुस्तिका में उसने बताया कि अगर धातु के चार खोखले गोलों में से हवा को बिलकुल निकाल दिया जाए तो वे किसी जहाज को ऊंचा उठा सकते हैं और उसे हवा में [illegible] सकते हैं, क्योंकि गोले अपने आस-पास की हवा की अपेक्षा हल्के [illegible]। लेकिन हम जानते हैं कि द लाना का विचार सही नहीं था, क्योंकि अगर धातु के बने गोले हैं तो पूर्ण निर्वात की अवस्था में कागज की तरह

मुड़-तुड़ जाते और मोटी धातु के बने होने पर बहुत भारी हो जाते फिर भी उसके मूल विचार का कुछ अंश सही था, वह यह कि ऐसा विमान बनाया जाए जो आस-पास की हवा की अपेक्षा हल्का हो।

यह तथ्य हमसे कुछ संबद्ध हो सकता है जिस व्यक्ति को सबसे पहला उड़ने वाला व्यक्ति कहलाने का श्रेय प्राप्त हुआ है वह भी एक जेसुइट पादरी ही था—इस पुर्तगाली व्यक्ति का नाम था बार्थोलोम्यू लोरेन्फ द गुस्माओ। उसका जन्म ब्राजील में सन्तोस मे हुआ था। इस विद्वान् पादरी ने किसी तरह लिस्बन स्थित राज दरबार का ध्यान आकर्षित किया और 1709 मे राजा से आवेदन किया कि मेरे आविष्कार के लिए मुझे पेटेंट प्रदान किया जाए। उसने अपने आविष्कार का नाम रखा 'हवा में उड़ने का यंत्र' जो 200 घंटे की यात्रा एक दिन मे पूरी कर सकता है। उसने यह दावा भी किया कि इस यंत्र का उपयोग समुद्र पार के

लियोनार्दो द्वारा बनाया गया हवाई छतरी का रेखाचित्र

अपने अधीनस्थ देशों के समाचार प्राप्त करने, एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी को धन और अनुबंध भेजने घिरे हुए नगरों को सहायता भेजने और जो लोग उन नगरों से निकलना चाहें, उन्हें उड़ाकर बाहर लाने आदि के काम मे लाया जा सकता है। यहां तक कि 'इससे पृथ्वी के ध्रुव प्रदेशों मे स्थित देशों की खोज की जा सकती है।'

गुस्माओ को न केवल पेटेंट ही मिला, बल्कि उसे कोइम्ब्रा विश्वविद्यालय मे विशेष दायित्व से रहित एक पद भी प्रदान किया गया। चार मास बाद अगस्त

1709 में उसने अपने विमान का प्रदर्शन लिस्बन दरबार के समक्ष आयोजित किया। यदि हम तत्कालीन लेखों पर विश्वास करें तो यह विमान जमीन से कुछ फुट उठा था, लेकिन हवा के जोर से एक छज्जे से टकराकर टूट गया और जमीन पर आ गिरा। इस प्रकार एक आदमी ने हजारों दर्शकों के सामने पहली उड़ान भरी।

इस घटना के अनेक काल्पनिक विवरण भी उपलब्ध हैं, जैसे कि विमान लिस्बन से चन्द्रमा के रास्ते से होकर वियना तक उड़ा। स्वयं इस विमान का विवरण भी कम काल्पनिक नहीं है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें वायुरोधक रेशम के चौदह छोटे गुब्बारे लगे थे और बीच के गोंडोला में रखे भभके से गरम हवा इन गुब्बारों में पहुंचती थी। गुस्माओ को इतना तो मालूम था कि गरम करने से हवा फैलती है तथा पतली और आस-पास के वातावरण से हल्की हो जाती है।

यह उसकी पहली और अंतिम उड़ान थी। पुर्तगाली दरबार के शक्तिशाली सदस्यों ने उसे दूसरा विमान बनाने से रोक दिया। बहुत से लोग ऐसे भी थे जो तकनीकी विकास या नये आविष्कारों से भयभीत थे। इस प्रकार इस जेसुइट पादरी के विरुद्ध षड्यन्त्र का सिलसिला शुरू हो गया। उस पर मुकदमा चलाने की कार्यवाही भी शुरू हो गयी और अगर वह समय रहते ही स्पेन से न भाग निकलता तो उस पर जादूगरी का भी आरोप लगाया जा सकता था। स्पेन में ही 1724 में उसकी मृत्यु हो गयी।

गुस्माओ की पहली उड़ान के बाद तीन चौथाई सदी गुजर गयी तब कहीं जाकर गरम हवा गुब्बारे का फिर से आविष्कार हुआ—और थोड़ी बहुत गलती से ही हाइड्रोजन गुब्बारों का भी आविष्कार हुआ। लीओन्स के निकट आनोने नगर में कागज का कारखाना चलाने वाले जोजफ और एतीएने मोंटगोल्फियेर बंधुओं को हवा में उड़ने का बड़ा शौक था। उन्होंने हवाई छतरियों के सहारे कुछ प्रयोग भी किए। जोजफ तो एक बड़ा भारी छाता और हाइड्रोजन (जिसे इसके अन्वेषक अंग्रेज रसायनविद हेनरी कैवेन्डिश ने 1766 में 'ज्वलनशील वायु' का नाम दिया था) लेकर अपने कारखाने की छत पर से कूदा भी था। मोंटगोल्फियेर बंधुओं का विचार था कि हवा से कई गुना हल्की होने के कारण इस गैस के सहारे किसी विमान को ऊंचा उड़ाया जा सकता है। लेकिन इसके लिए उन्होंने जो कागज के गुब्बारे बनाए थे, उनमें से यह बराबर निकल ही रही थी। इसके अलावा इसे तैयार करना न केवल कठिन बल्कि खतरनाक भी था।

तब उन्होंने फिर से गरम हवा वाले गुब्बारों से प्रयोग शुरू कर दिया और

फ्रांसिस्को द लाना का वायुपोत
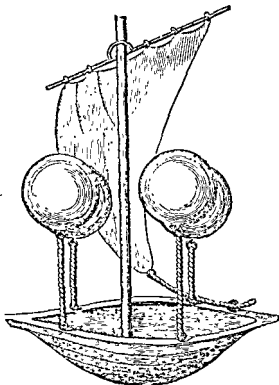
विचित्र बात यह है कि उन्हें यह गलत फहमी थी कि वह 'बिजली के धुएं' के साथ प्रयोग कर सकते हैं। टाफेटा से बने और नीचे से खुले गोलों के नीचे घास-फूस और ऊन जलाकर वे उन्हें हवा में ऊंचा उठाते हुए देखते रहते थे। जून 1783 में उन्होंने अपने नगर आनोने के निवासियों को इकट्ठा किया और उनके सामने एक गुब्बारे को 6,000 फुट ऊंचा उड़ाया। गुब्बारा बाद में सवा मील दूर जाकर गिरा।

स्थानीय अधिकारियों ने इस घटना की सूचना पेरिस में केन्द्रीय सरकार के पास भेजी। उन्होंने रहस्यमय 'मोंटगोल्फियेर वायु' का उल्लेख किया, जिसमें

गुब्बारे में हाइड्रोजन भरी जा रही है

रावर्ट बंधुओं ने 10 फुट व्यास का रेशम का गुब्बारा तैयार किया और उसे हवाबंद बनाने के लिए उस पर रबर के घोल की एक परत जमा दी। इस बीच प्रोफेसर चार्ल्स ने उनके कारखाने के पास एक बड़ा पीपा रखवा दिया और उसे पानी और लोहे के चूर्ण से भरवा दिया। फिर उन्होंने थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे गंधक का तेजाब डालना शुरू किया। इस प्रकार हाइड्रोजन गैस तैयार होने लगी और पीपे मे लगी एक नली से धीरे-धीरे गुब्बारे मे भरने लगी।

टाफेटा के एक बोरे को आकाश में उड़ा ले जाने का जादुई गुण था। वास्तव में यह गुब्बारा इसलिए उड़ पाता था कि उसकी हवा गरम किए जाने से आस-पास के वातावरण की अपेक्षा अधिक हल्की हो जाती थी।
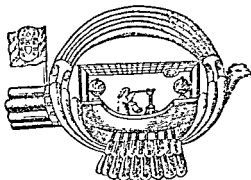
गुस्माओ के वायुपोत का एक समकालीन चित्रकार द्वारा अंकित काल्पनिक चित्र

पेरिस में इन सूचनाओं पर गम्भीर विचार किया गया और आश्चर्य भी प्रकट किया गया। आनोने से प्राप्त रिपोर्ट की जांच के लिए विज्ञान अकादमी में भेजा गया, जहां इस सम्बन्ध में अध्ययन के लिए एक समिति नियुक्त की गयी। परन्तु अखबार वालों और आम जनता को इस बात की नाराजगी थी कि मामूली से कस्बाती नगर को इतनी बड़ी घटना का दर्शक होने का श्रेय प्राप्त हो गया। उन्होंने हल्ला मचाना शुरू किया कि अगर सचमुच ऐसे गुब्बारे होते हैं जो उड़ सकते हैं तो पेरिस में ही उड़ना चाहिए। महान रसायनविद लवाजियेर ने सिफारिश की कि मोंटगोफियेर बंधुओं से परामर्श किया जाना चाहिए। प्रोफेसर तोजास द सांफोंद ने पेरिस में एक गुब्बारा उड़ाने के लिए कुछ दिनों में 10,000 लिवर का चंदा जमा कर दिया। आनोने को एक पत्र भेज कर एतीएने मोंटगोफियेर को अपने भाई के साथ पेरिस आने और अपने गुब्बारे का प्रदर्शन करने के लिए आमंत्रित किया गया। लेकिन पेरिस वासी मोंटगोफियेर बंधुओं के आने का इंतजार करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए प्रोफेसर सोजर आलेक्सांदर चार्ल्स जल्दी से एक ऐसा ही गुब्बारा वैज्ञानिक उपकरणों के प्रसिद्ध निर्माता राबर्ट बंधुओं के सहयोग से बना देने के लिए तैयार हो गए। हालांकि उन्होंने अनुमान से यह पता लगाया कि 'मोंटगोफियेर वायु' क्या चीज हो सकती है और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह हाइड्रोजन गैस के अलावा और कुछ नहीं हो सकती।

गुब्बारे में हाइड्रोजन भरी जा रही है

राबर्ट बंधुओं ने 10 फुट व्यास का रेशम का गुब्बारा तैयार किया और उसे हवाबंद बनाने के लिए उस पर रबर के घोल की एक परत जमा दी। इस बीच प्रोफेसर चार्ल्स ने उनके कारखाने के पास एक बड़ा पीपा रखवा दिया और उसे पानी और लोहे के चूर्ण से भरवा दिया। फिर उन्होंने थोड़ी-थोड़ी मात्रा में गंधक का तेजाब डालना शुरू किया। इस प्रकार हाइड्रोजन गैस तैयार होने लगी और पीपे में लगी एक नली से धीरे-धीरे गुब्बारे में भरने लगी।

इस काम में चार दिन का समय लगा और जो लोग इसमें लगे थे, उन्हें भली-भांति मालूम था कि वे ऐसा काम कर रहे हैं जिसमें उनकी जान भी जा सकती है, लेकिन प्रोफेसर की हिदायतों के कारण कोई दुर्घटना नहीं हुई। वे बार-बार एक होज पाइप से गुब्बारे पर पानी का छिड़काव करवाते रहे ताकि वह बहुत गर्म होकर फट न जाए। 26 अगस्त 1783 को भराई का काम खत्म हुआ अब गुब्बारे को शाम्प द मार मैदान में (जहां आजकल आइफेल टावर स्थित है) पहुंचाने की समस्या थी, जहां उसे उड़ाया जाने वाला था। यह काम रात के समय किया गया। कुछ लोग मशालें लेकर आगे-आगे चले। उनके पीछे लकड़ी की एक फ्रेम में गुब्बारे को बांध कर दूसरे लोग उनके पीछे चले। इस विचित्र जुलूस का वर्णन करते हुए उस समय के एक पत्रकार ने लिखा है, "जब रात में कुछ लोगों ने उस दृश्य को देखा तो वह मारे भय के घुटनों पर झुक कर ईश्वर से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगे।"

27 अगस्त को दोपहर में तोप का एक गोला दागा गया और प्रोफ़ेसर चार्ल्स ने गुब्बारे की रस्सियों को खोलने का आदेश दिया। गुब्बारा बहुत तेजी से ऊपर उठ चला। लगभग तीन लाख दर्शकों की भीड़ जो कि पेरिस की आधी जनसंख्या के बराबर थी, खुशी से चीख उठी। तीन हजार फुट की ऊंचाई पर गुब्बारा एक बादल में गायब हो गया, लेकिन फिर बादल के दूसरी ओर निकल आया और थोड़ी देर में आंखों से ओझल हो गया। उस समय एक अखबार ने लिखा है, "दर्शकों में उत्साह और आश्चर्य की लहर दौड़ गयी। नयी से नयी सनसनी की खोज में रहने वाली पेरिस की जनता ने इस विचित्र और कल्पनातीत दृश्य से अपना भरपूर मनोरंजन किया।"

प्रोफ़ेसर चार्ल्स के मना करने पर भी राबर्ट बंधुओं ने गुब्बारे में बहुत ज्यादा हाइड्रोजन भर दी थी, इसीलिए जैसे ही उस पर वातावरण का दबाव अधिक कम हुआ, वह फट गया और 15 मील दूर जा गिरा। गुब्बारा कुल 100 मिनट तक उड़ा था। फटने के बाद वह गोनेसी गांव में जा गिरा जहां के निवासियों को पेरिस के प्रदर्शन के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं थी। जब उन्होंने एक बड़ी-सी विचित्र और बदबूदार चीज आसमान से गिरती हुई देखी तो उन्हें लगा शायद यह सीधे नर्क से चली आ रही है। दो पादरियों ने जांच-पड़ताल करके घोषणा की कि खुद शैतान ने इस दैत्य को हमारे गांव में भेजा है। किसान लाठिया, कुल्हाड़िया और पत्थर लेकर फटे हुए गुब्बारे पर पिल पड़े और बाद में उसे एक घोड़े की पूंछ में बांध कर घंटे भर तक गांव में घसीटा गया। इन्हीं गांव वालों में कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने इस विचित्र वस्तु के नर्क से आने

उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। उनका कहना था कि यह तो चंद्रमा ही इस गांव में आ गिरा है और गांव के मूर्खों ने उसे तोड़-फोड़ डाला।

उस समय किसी को मालूम नहीं हो सका कि एनीएने मोंटगोल्फियेर चुपचाप अपने प्रतिद्वंद्वी के गुब्बारे के इस प्रदर्शन को देखने के लिए पेरिस में मौजूद था। बाद में उसने अकादमी के सदस्यों से कहा कि मेरे विचार में हाइड्रोजन गैस भरना बहुत खतरनाक है। सिर्फ गर्म हवा से भरे गुब्बारों को ही उड़ाने की इजाजत मिलनी चाहिए। अब पेरिसवासियों को भी पता चल गया कि प्रोफेसर चार्ल्स ने गलती से यह आविष्कार किया था। अब विशेषज्ञों में भी दो दल हो गए थे जिनमें से एक चार्ल्स की विधि 'चार्लीयेर' का समर्थन करता था, तो दूसरा गर्म हवा वाले गुब्बारों की 'मोंटगोल्फियेर' प्रणाली का।

पन्द्रह दिन के भीतर ही एनीएने मोंटगोल्फियेर ने पेरिस में उड़ाने के लिए अपना पहला गुब्बारा तैयार कर लिया। यह चार्ल्स के गुब्बारे से छः गुना बड़ा था। इसमें उसने कपड़े के नीचे अपनी प्रिय वस्तु कागज का अस्तर लगाया था। राजा ने भी इस प्रदर्शन को देखने की इच्छा प्रकट की जिसका आयोजन 19 सितम्बर को वर्साई में किया गया था। मोंटगोल्फियेर ने इसके साथ कुछ जानवरों को भी ऊपर भेजने का निश्चय किया। यह मानव-प्राणियों की उड़ान के पहले चरण के रूप में था। अब भी अंतरिक्ष रॉकेटों के हमारे युग में इस प्रथा का निर्वाह होता है। गुब्बारे के नीचे लटकी हुई टोकरी में एक भेड़, एक बत्तख और एक मुर्गे को रखा गया। विचित्र बात यह है कि मोंटगोल्फियेर को अब भी यह विश्वास था कि उसके 'गुप्त सिद्धांत' के अनुसार घास-फूस और ऊन को जलाने से ही गुब्बारा ऊपर उठ सकेगा।

लेकिन गुब्बारे का यह शाही प्रदर्शन पूरी तरह से सफल नहीं हो सका। गुब्बारा केवल आठ मिनट तक हवा में रहा और फिर एक पेड़ के सिरे में फंस गया। टोकरी की डोरी टूट गयी, लेकिन सौभाग्य से तीनों जानवर जीवित नीचे आ गए। सिर्फ मुर्गे के पंख में कुछ चोट आयी थी। इस पर विद्वानों में लंबी-चौड़ी बहसें छिड़ गयीं और विचार किया जाने लगा कि वायु-दाब किसी अज्ञात कारण से जीवित प्राणियों के लिए खतरनाक है। अंत में एनीएने के इस दावे को स्वीकार किया गया कि रस्सी के टूटने से भेड़ डर गयी होगी और उसी ने घबराहट में मुर्गे का पंख कुचल दिया होगा।

इस बीच जोसेफ भी पेरिस में अपने भाई के पास आ पहुंचा और दोनों मिलकर पहला मानवयुक्त गुब्बारा तैयार करने के काम में जुट गए। दोनों स्वयं हवा में उड़ना चाहते थे, लेकिन इसी बीच एक अन्य उत्साही फ्रांसीसी युवक

पिलात्रे द रोजियेर ने अधिकारियों पर दबाव डालना शुरू किया कि उसे ही 'मोंटगोफियेर' में उड़ने वाले पहले व्यक्ति का सम्मान प्राप्त करने का अवसर दिया जाए। वह पहले भी चार्ल्स और रॉबर्ट के साथ किए गए फ्रैंकलिन के बिजली संबंधी खतरनाक प्रयोगों को करने का साहस दिखा चुका था। अंत में उसे अनुमति मिल गयी और पन्द्रह अक्तूबर को इस नये गुब्बारे की परीक्षण-उड़ान शुरू हो गयी। 54 फुट व्यास के इस गुब्बारे की समाई 55 हजार घन फुट थी और इसके निचले हिस्से के चारों ओर यात्रियों के लिए एक छज्जा बना हुआ था। इसके अलावा पहली बार इसमें ताप के अपने साधन को भी ऊपर ले जाने की व्यवस्था की गयी थी। लोहे के एक पिंजरे में आग और जलता हुआ ईंधन इसके खुले हुए पेंदे के नीचे लटकाया गया था। ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि छज्जे में बैठे-बैठे ही आग को बढ़ाया या घटाया जा सके। परीक्षण उड़ानों में रोजियेर अपने साथ अपने एक मित्र काउन्ट द आर्लेंड्स को भी ऊपर ले गया। परीक्षण-उड़ानें सफल रहीं, लेकिन मोंटगोफियेर बंधु इस बात से चिंतित थे कि अगर उड़ाकों को कुछ हो गया, तो वायु-यात्रा की उनकी सारी योजना ही ठप्प हो जाएगी। राजा ने स्वयं सुझाव दिया था कि इन दो उच्चवर्गीय युवकों की बजाय मृत्युदण्ड प्राप्त दो अपराधियों को ऊपर भेजा जाए। लेकिन रोजियेर इस बात पर बहुत नाराज हुआ कि आकाश में उड़ने वाले पहले व्यक्ति का श्रेय उससे छीन कर दो मामूली अपराधियों को दे दिया जाए। उसने अपने साथी के साथ राजा के सामने बड़ी मिन्नत की और अंत में उन्हें अनुमति मिल गयी।

मुख्य प्रदर्शन ब्वा द बोलोन में 21 नवम्बर 1783 को बहुत बड़ी भीड़ के सामने सम्पन्न हुआ। तेज हवा के बावजूद गुब्बारा बड़ी तेजी से ऊपर उठा। उड़ान के अपने अनुभव को याद करते हुए द आर्लेंड्स ने बाद में बताया कि किस तरह पृथ्वी के इतने ऊपर के दृश्य ने दोनों यात्रियों को अभिभूत कर दिया कि वह आग की ओर पूरा ध्यान नहीं दे सके। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि आग के कारण गुब्बारे के आवरण में कुछ छेद हो गए थे। द आर्लेंड्स ने कहा, "हमें नीचे उतर जाना चाहिए।" इस पर द रोजियेर ने उत्तर दिया, "लेकिन अभी तो हम पेरिस के ऊपर ही हैं।" द आर्लेंड्स ने कहा, "हमें शहर से परे होने की कोशिश करनी चाहिए।

वे सफलतापूर्वक अपने उड़ान के स्थान से पांच मील दूर एक खुली जगह में उतरे। लोगों ने दौड़कर उन्हें घेर लिया और द रोजियेर का जैकेट छीन लिया जिसे उसने अंगीठी की आंच से बचाने के लिए ऊपर ही उतार लिया था। लोगों ने जैकेट के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। वे स्मृति चिह्न के रूप में इन टुकड़ों को घर

ले गए। उड़ाकों और मोंटगोफियेर बन्धुओं को राष्ट्रीय वीरों का सम्मान प्राप्त हुआ। लेकिन इस बीच प्रोफेसर चार्ल्स भी चुप नहीं बैठे थे। इसके नौ दिन बाद ही उनका नया हाइड्रोजन गुब्बारा उड़ान के लिए तैयार था।

तकनीकी दृष्टिकोण से यह प्रयोग अधिक महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि प्रोफेसर ने अपने यान में अनेक सुधार किए थे। उन्होंने गुब्बारे को चारों ओर रस्सी की जाली से ढंक दिया था और उसके नीचे गोंडोला को लटकाया था ताकि उसका वजन हर तरफ से समान रह सके। उन्होंने गैस को बाहर निकालने के लिए एक वाल्व भी बनाया था जिसकी डोरी खीचने से गुब्बारा नीचे उतर सकता था। उन्होंने इसमें भार के लिए बालू की कुछ थैलियां भी रखवाई थीं और इसे उतारने के लिए लंगर, कुछ थर्मामीटर और ऊंचाई जानने के लिए कुछ बेरोमीटर भी साथ रखे। इस प्रकार संक्षेप में उनका गुब्बारा गैस के उन गुब्बारों का नमूना बन गया जो बाद में एक सदी से अधिक तक काम में आते रहे।

सत्ताईस फुट व्यास और एक हजार पौंड की भार-वाहन क्षमता वाला यह गुब्बारा 1 दिसम्बर 1783 को उड़ने वाला था। इसके लिए काफी महंगी दरों पर टिकट बेचे गए, और फिर दर्शकों की बहुत भीड़ जमा हो गयी। परन्तु उड़ान शुरू होने के ठीक पहले एक पुलिस अधिकारी ने मौके पर पहुंचकर घोषित किया कि हाइड्रोजन के खतरे को देखते हुए महाराजा ने इस उड़ान पर रोक लगा दी है। प्रोफेसर ने उसे इस सन्देश के साथ वापस कर दिया कि अगर मुझे अनुमति नहीं दी गयी तो मैं यहीं अपने गोली मार लूंगा और अपने आविष्कार का सारा रहस्य अपने साथ कब्र में ले जाऊंगा। एक घंटे बाद वह अधिकारी राजा की अनुमति लेकर वापस पहुंचा और गुब्बारे की रस्सियां खोल दी गयीं, जिसका नाम 'चार्लेयिर' रखा गया था।

'चार्लेयिर' की इस उड़ान का वैमानिकी के इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है। प्रोफेसर चार्ल्स अपने साथ एक यात्री को भी उड़ान पर ले गए। दो घंटे तक मध्यम ऊंचाई पर उड़ने के बाद प्रोफेसर ने बड़ी सफाई से गुब्बारे को नीचे उतारा—और वो भी केवल अपने मुसाफिर को उतारने के उद्देश्य से। उन्होंने गुब्बारा फिर उड़ाया और इस बार काफी ऊंचाई पर उड़ान भरने की ठानी। यह अब तक की सबसे ऊंची उड़ान थी। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होकर और ऊंचाई पर उड़ने के आनन्द में मस्त होकर प्रोफेसर चार्ल्स गुब्बारे को ऊंचे से ऊंचा उड़ाते गए। यहां तक कि वे दस हजार फुट की ऊंचाई तक पहुंच गए। यहां उन्होंने देखा कि उनके कानों में दर्द होने लगा, और उन्होंने नीचे उतरने का फैसला किया।

सारे यूरोप में सनसनी फैल गयी। हर आदमी गुब्बारे की यात्रा की चर्चा करने लगा। 'चार्लीयर' की विजय हुई और लोग गर्म हवा वाले गुब्बारे को याद भूल गए। अब कई देशों में उड़ान के सफल प्रयास किए गए। वायुयात्रा भी एक पेशा बन गयी और वैमानिकी को विज्ञान की एक शाखा मान लिया गया। कवियों ने उस यान के गीत गाए, जिसने मानव को पृथ्वी के बन्धन से मुक्त किया। दार्शनिकों में इस विषय पर शास्त्रार्थ होने लगा कि विमान-यात्रा का समाज के विकास पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। जर्मन महाकवि गेटे ने केवल में एक ऐसी ही उड़ान को देखकर लिखा, "हवाई गुब्बारों का आविष्कार हो गया है। मैं स्वयं ही इस खोज के इतना नजदीक पहुंच चुका था। इस आविष्कार के श्रेय से वंचित होने का क्लेश मुझे भी है।"

जब जनवरी 1785 में कालाई के एक मैकेनिक जां पियेरे ब्लांशार और एक अंग्रेज वैज्ञानिक डा० जेफ्राइस ने इंगलिश चैनल के ऊपर से उड़ान भरी तो विमान-यात्रा के इतिहास में एक नया कीर्तिमान स्थापित हो गया। यह दोनों अपने गुब्बारे में डोवर से रवाना हुए थे। कुछ दूर तक सब ठीक रहा, लेकिन आधी चैनल पार करने के बाद गुब्बारा नीचे उतरने लगा। दोनों उड़ाकों ने भार हल्का करने के लिए पहले तो उस डोली को काटकर फेंक दिया जिसमें वे बैठे थे। फिर उन्होंने गुब्बारे की जाली से चिपककर उड़ते हुए एक-एक करके अपने सारे कपड़े, यहां तक कि अपने पतलून भी उतार फेंके। जब वे ठण्ड से कांपते हुए परन्तु सुरक्षित फ्रांस की भूमि पर उतरे तो गांव वालों ने उनका खूब मजाक बनाते हुए स्वागत किया।

अब दुर्घटनाएं भी होने लगीं। कोई गुब्बारा गिर पड़ता था, तो कोई टूट जाता था और किसी में आग लग जाती थी। उड़ान के क्षेत्र में ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले पिलात्रे द रोजियेर को इसका पहला शिकार होना पड़ा। उसने 'चार्लीयेर' 'मोंटगोफियेर' के सम्मिलित रूप का एक गुब्बारा बनाया और लोगों की चेतावनी की उपेक्षा करते हुए उसके जरिये उड़ान भरी। अन्त में गुब्बारे का आवरण ऊपर हवा ही में फट गया तथा रोजियेर और उसके साथी को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

आधुनिक युग के अनेक आविष्कारों की भांति गुब्बारे का भी सैनिक दृष्टि से अध्ययन किया गया ताकि एक युद्धकौशल में नयी क्षमता प्राप्त की जा सके। 1794 में ही फ्रांसीसी सेना ने पर्यवेक्षण के लिए एक गुब्बारे का उपयोग किया था। लेकिन हवाई बमबारी 1849 तक आरम्भ नहीं हो सकी जबकि फ्रांस ने गर्म हवा से भरे सौ चालकहीन गुब्बारे वेनिस पर बमवर्षा के लिए भेजे थे। नेपोलियन की
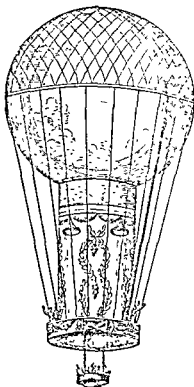
पिलात्रे द रोज़ियेर द्वारा तैयार किया गया गरम हवा और हाइड्रोजन वाला एक गुब्बारा

भी कुछ समय तक यह इच्छा रही कि इंगलैण्ड पर एक साथ समुद्री और हवाई *आक्रमण किया जाए।* परन्तु *कठिनाई यह थी कि किसी* प्रकार से इंजन और पतवार से रहित गुब्बारे बहती हुई हवा की इच्छा पर ही निर्भर रहने के लिए मजबूर हैं। और सैनिक दृष्टि से ऐसी चीज पर भरोसा करना सम्भव नहीं था। इतना होते हुए भी हाल के जमाने तक गुब्बारों का सामरिक उपयोग होता रहा है। पहले तो *अमरीकी गृहयुद्ध में इनका उपयोग किया गया* और *1870-71* में पेरिस के घेरे के समय फ्रांसीसियों ने घिरे हुए लोगों और पालतू सन्देशवाही कबूतरों को शहर से बाहर निकालने के लिए 66 गुब्बारों का प्रयोग किया था।
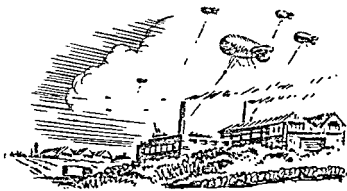
द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन पर स्थापित किए गए अवरोधक गुब्बारे

इनमें से कबूतर तो पेरिसवासियों के लिए चिट्ठियों के सूक्ष्म फोटोग्राफ लेकर वापस पेरिस लौट आए। जिन लोगों ने वायु के जरिये घिरी हुई राजधानी से भागने के लिए गुब्बारों का प्रयोग किया था, उनमें गेम्बेटा नामक नेता भी था जिसने वहां से भागकर दक्षिणी फ्रांस में एक नयी सेना का गठन किया था।

प्रथम विश्वयुद्ध में तोपखाने के लिए पर्यवेक्षण का हवाई फोटोग्राफ का काम बड़े व्यापक पैमाने पर गुब्बारों के जरिये किया गया। लेकिन इन प्रयासों में बहुत कम पर्यवेक्षक जीवित बच सके, क्योंकि इतने बड़े आकार के और जल्दी से आग पकड़ लेने वाले स्थिर निशाने पर गोली मारना बच्चों के खिलवाड़ से अधिक नहीं था। द्वितीय विश्वयुद्ध में भी भारी संख्या में गुब्बारे उड़ाकर शत्रु के मोर्चों पर उड़ने वाले विमानों की रोकथाम की व्यवस्था की गयी थी। परन्तु परिवहन के साधन के रूप में अब भी गुब्बारों को बहुत खतरनाक और अविश्वसनीय माना जाता रहा, क्योंकि एक बार हवा में ऊपर उठने के बाद कोई भी नहीं कह सकता था कि गुब्बारा कहां उतरेगा। पूरी उन्नीसवीं सदी के दौरान गुब्बारे केवल उत्सव की शोभा या चमत्कार दिखाने के साधन मात्र बने रहे। हमारे अपने जमाने में गुब्बारे उड़ाना केवल कुछ साहसी खिलाड़ियों के मनोरंजन का साधन बनकर रह गया है। इसके अलावा ऋतु-विज्ञान में मौसम का हाल जानने के लिए रेडियो सोंड हवा में भेजने की परम्परा अब भी जारी है। (देखें तीसरा भाग)

हवा पर विजय पाने के बिल्कुल आरम्भ में ही अनेक उड़ाके और आविष्कारक गुब्बारायान या 'डिरिजिबल' के बनाने के बारे में विचार करते रहे।

इस सम्बन्ध मे अनेक वड़े विचित्र और अव्यावहारिक सुझाव भी पेश किए जाते हैं—जैसे गुब्बारों में पाल और चप्पू या हाथ से चलाए जाने वाले स्क्रू पखे

जिफार्द का भाप चालित डिरिजिबल वायुपोत
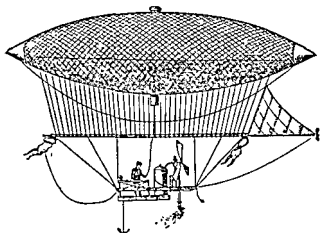
लगाए जाने चाहिएं, अथवा पक्षियों को सिखा-पढ़ाकर उनसे गुब्बारे खिचवाए जाने चाहिएं। किसी ने एक घूमते हुए स्क्रू की शकल मे गुब्बारे बनाने का सुझाव भी दिया। परन्तु इस तकनीकी शोर-शराबे के बीच शायद सबसे समझदारी की आवाज थी एक फ्रांसीसी अधिकारी जा वैप्तीस्त म्यूसनियर की, जिसने 'मोंटगोल्फियेर' की पहली उडान के छह मास बाद ही पेरिस अकादमी के विचारार्थ 'हवाई यन्त्रों का सतुलन' शीर्षक से एक प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। उसका यह सुझाव ठीक ही था कि डिरिजिबल गुब्बारायान का आकार और बड़ा और लम्बूतरा होना चाहिए तथा उसमें बहुत से स्क्रू पखे लगे होने चाहिए, लेकिन इसे चलाने के लिए बहुत बड़ी शक्ति की आवश्यकता थी।

और यह अन्तिम आवश्यकता ही अगले सौ साल तक वायुयान के आविष्कारों के मार्ग मे रोड़ा बनकर अटकी रही। तब तक केवल एक मुख्य चालक भाप-इजन ही अस्तित्व में आ सका था, और बार-बार परीक्षा करके देखा जा चुका था कि वह इस कार्य के लिए बहुत भारी पडता था। एक फ्रांसीसी हेनरी जिफार्द ने एक अपेक्षाकृत छोटा और तेजी से घूमने वाला भाप-इंजन बनाया और उसे सिगार की आकृति के अपने गुब्बारायान में फिट किया।

उसने 1852 में इसके सहारे एक सफल उड़ान भरी, परन्तु अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यान खूब बड़ा, लगभग 250 फुट लम्बा होना चाहिए तभी कोई बात बन सकेगी। परन्तु वह अपने समर्थकों को इस योजना को आर्थिक सहायता करने के लिए राजी कर पाता, उसके पहले ही अपनी आंखों से हाथ धो बैठा। बाद में उसने आत्महत्या कर ली।

एक अन्य भाप-चालित डिरिजिबल कर्नेक्टिकट में एक अमरीकी प्रोफेसर सी० ई० रिचेल ने 1878 में उड़ाया, लेकिन उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। फ्रांसीसी आविष्कर्ताओं के दो दलों ने बैटरियों के जरिये विद्युतचालन का प्रयोग किया। इनमें एक दल तिसांदियेर बन्धुओं का था जिसने 1883 में यह प्रयोग किया। कैप्टेन रेनार्ड और कैप्टेन क्रैब्स ने भी दो साल बाद इसी प्रयोग को दोहराया था। एक जर्मन तकनीशियन पॉल हैनलीन ने लेन्वा द्वारा निर्मित (देखें, अध्याय 3) दो गैस-इंजनों का उपयोग किया, लेकिन वे इस काम के लिए बेकार सिद्ध हुए।

केवल पेट्रोल इंजन के आगमन से ही डिरिजिबल यान का विकास सम्भव हो सका, क्योंकि भार और कार्यक्षमता का उसका अनुपात इसके अनुरूप बैठता था। परन्तु आगे की कहानी सुखद नहीं है, और परिवहन के आधुनिक साधनों में शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने अपने संक्षिप्त जीवन-काल में—केवल चालीस वर्ष में—इतनी बड़ी संख्या में लोगों के जीवन का बलिदान लिया हो।

गोटलीब डायमलर (देखें, अध्याय 3) और उनके मुख्य सहायक विल्हेल्म मेबाख को 1890 के दशक में वायुयानों के लिए उच्च शक्ति के अनेक पेट्रोल-इंजन बनाने के आर्डर मिले। उनके एक ग्राहक थे, कार्ल वोल्फर्ट डॉ० वुल्फर्ट, जिन्होंने अपने छोटे वायुयान में 10 अश्वशक्ति का इंजन लगाया था और 1896 में हुई बर्लिन औद्योगिक प्रदर्शनी के मौके पर अनेक छोटी छोटी उड़ानें भरी थीं। एक साल बाद उन्होंने फिर बर्लिन के समीप टेम्पलहोफ मैदान के सिरे से उड़ान भरी, लेकिन उनका वायुयान हवा में ही दूर जा गिरा वुल्फर्ट और उनके मैकेनिक को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

[illegible] ने [illegible] के एक [illegible] की [illegible] से एल्युमीनियम के ढांचे वाले एक वायुपोत के डिज़ाइन में [illegible] की। उसे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा [illegible] का विकास किया था। [illegible] उस पर [illegible] का [illegible] लगाया था, जिसके कारण उसे बड़ी [illegible] [illegible] अन्त में उसे [illegible] कि उसका [illegible]

टेम्पलहोफ में अपनी पहली उड़ान के लिए तैयार है तो वह प्रसन्नता की उत्तेजना को सहन नहीं कर सका और उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा पत्नी ने उसके काम को जारी रखा, और 16 अश्वशक्ति के डायमलर इंजन से युक्त वह यान नवम्बर 1897 में टेम्पलहोफ से उड़ा। इसे एक पुराना तालासाज चला रहा था। कुछ मिनट बाद उसके पंखे के बेल्ट उतर गए और वह तेज हवा में फसकर गिर पड़ा। चालक बिना किसी चोट के बच गया।

इस प्रदर्शन को देखने वाले अफसरों में लेफ्टिनेण्ट जनरल काउंट फर्डिनांड जेपेलिन भी थे। उन्होंने एक उपयोगी वायुपोत बनाने का दृढ़ निश्चय किया। वे हर तरह का नुकसान सहने के लिए तैयार थे। उन्होंने अपनी योजना को पूरा करने के लिए थोड़े ही दिनों में अपना बहुत-सा धन नष्ट कर डाला। अपनी महत्वाकांक्षी योजना की पूर्ति के लिए उन्हें लोगों से और धन प्राप्त करना पड़ा। उनका भी मत था कि खूब बड़ा होने पर ही कोई वायुपोत सफलतापूर्वक उड़ सकता है। 1895 की उनकी पहली डिजाइन एक बहुत बड़े हिरिजिबल की थी, जो अन्य कई वायुपोतों को खींच सकता था। बाद में वे एक अकेले वायुपोत की डिजाइन पर काम करने लगे। जुलाई 1900 में वे अपने पहले 420 फुट लम्बे 'जेपेलिन' से कांस्टेंस झील के ऊपर उड़े। इसे बीस हजार दर्शकों की उपस्थिति में उड़ाया गया और शुरू में इसकी रस्सियों को सौ सैनिकों ने पकड़ रखा था। इस वायुपोत ने न केवल सभी पिछले रिकार्ड तोड़ दिए, बल्कि जर्मनी के सरकारी और सैनिक क्षेत्रों में हिरिजिबल वायुपोत सम्बन्धी पूर्वाग्रहों को भी समाप्त कर दिया। यह विशाल सिगारनुमा वायुपोत आकाश में तैरता हुआ जहां कहीं गया वहां लोगों के उत्साह की सीमा न रही।

लेकिन वे लोग भी गलत सिद्ध नहीं हुए जो वायुपोत की व्यावहारिकता में सन्देह करते थे। जेपेलिन ने बड़े से बड़ा वायुपोत बनाना जारी रखा। लेकिन 1908 में उनके पांचवें यान को भारी दुर्घटना का सामना करना पड़ा। आग लग जाने से वह गिर पड़ा और कई आदमियों की जानें चली गयीं। परन्तु समस्त जर्मनी में चन्दे और लाटरियों के जरिये धन इकट्ठा किया जाने लगा, ताकि और अधिक संख्या में जेपेलिन बनाए जा सकें। जेपेलिन-यान अब राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया था। अब ऐसे विशेषज्ञों की भी कमी नहीं थी जो यह मानते थे कि यदि वायुपोत को परिवहन का एक व्यावहारिक साधन बनाया जाता है तो जेपेलिन की डिजाइन ही इसके लिए सर्वोत्तम मानी जानी चाहिए। काउंट जेपेलिन ने अपने यानों के लिए सैकड़ों फुट लम्बे ढांचे बनवाए।

ढांचे के लिए वे हल्के किन्तु ठोस एल्यूमीनियम का उपयोग करते थे। उन्होंने
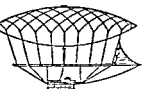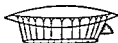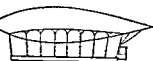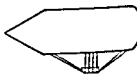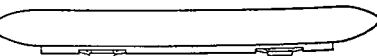
गिफर्ड से ज़ेपेलिन तक के वायुपोत : आकार की तुलना।

यान के भीतरी भाग को कई पृथक् गैस कक्षों में विभाजित कर दिया ताकि अगर किसी गड़बड़ी के कारण गैस निकलने लगे तो पूरे यान को नुकसान न पहुंच सके। मेबाख द्वारा बनाए गए इंजनों को भी उन्होंने यात्रियों के बैठने की भारी 'कार' के बाहर विशेष डोलियों में लटका कर रखा था।

प्रथम विश्व युद्ध के पहले, जिसमें कि ज़ेपेलिन यानों ने अपनी उल्लेखनीय भूमिका अदा की थी, अनेक आविष्कर्ताओं ने थोड़ी-बहुत सफलता के साथ अपने वायुपोत उड़ाए। इसमें ब्राज़ील के बहुत बड़े कॉफी व्यापारी का खिलाड़ी और साहसी पुत्र अल्बर्तो सान्तोस-ड्यूमोंट भी था। जिसने 1898 में पेरिस में अपना पहला वायुपोत उड़ाया था, जो 80 फुट लम्बे और हाइड्रोजन से भरे रेशम के एक थैले जैसा ही था। वह गिरकर नष्ट हो गया। उसने एक के बाद एक बनाए, पर तेरह अन्य यानों का भी यही हश्र हुआ। लेकिन उस साहसी हवाबाज ने

हिम्मत नहीं हारी। उसे कई बार जानबूझकर या अनजाने कभी पेरिस की सड़कों पर, कभी होटलों के आंगन में, कभी भूमध्य सागर में और कभी पेड़ों के सिरों पर उतरना पड़ता था। इसलिए पूरे यूरोप में उसके नाम की चर्चा होने लगी। हालांकि उसका वायुपोत छोटा ढीला-ढाला था और उसमें धातु का ढांचा भी नहीं लगा था। फिर वह पहला हवाबाज था जिसने यह सिद्ध कर दिखाया था कि पेट्रोल-इंजन से उड़ान न केवल सम्भव है, बल्कि वायुपोत के मामले में अब यही एकमात्र तर्कसंगत विकास माना जा सकता है। उसने 1901 में अपने वायुपोत से पहली बार आइफेल टावर का चक्कर लगाकर एक फ्रांसीसी उद्योगपति द्वारा घोषित इनाम भी जीता था।

एक फ्रांसीसी चीनी कारखाने के इंजीनियर हेनरी आल्बेर्त जूलियो तथा कारखाने के मालिक दो भाइयों पॉल और पियेरे लेबोदी को एक अर्ध-अनम्य वायुपोत बनाने का श्रेय प्राप्त है जिसकी गैस-थैली को धातु के ढांचे की सहायता से कड़ा आकार दिया गया था। इनके वायुपोत 'लेबोदी-प्रथम' ने 1902 से 1903 के बीच अनेक सफल उड़ानें भरीं। लेकिन अन्त में यह भी एक बार तेज हवा में फंसकर नष्ट हो गया। बाद में इन लोगों को पहला सैनिक वायुपोत 'ला पात्री' तैयार करने का काम सौंपा गया, जो 70 अश्वशक्ति के इंजन से युक्त 200 फुट लम्बा यान था। यह यान बाद में 150 मील की सफल यात्रा के बाद एक तूफान में फंसकर अटलांटिक महासागर में कहीं जा गिरा।

इंगलैण्ड को इस दिशा में बहुत कम सफलता मिली। इंजीनियर कोडी ने एक लचकीला वायुपोत 'नली सेकंडस' बनाया और एक विशेष हल्के पदार्थ से उसका आवरण तैयार किया। जब यह उड़ा तो ऐल्डरशॉट से लन्दन के बीच की यात्रा में इसे विवश होकर क्रिस्टल महल के मैदान में उतरना पड़ा और फिर वहां से यह उड़ ही नहीं सका। इसके बाद बनाए गए 'नली सेकंडस-द्वितीय', 'बीटा' और 'गामा' की भी कुछ ऐसी ही गति हुई। ब्रिटेन में बना पहला अनम्य वायुपोत विकर्स का 'आर-1', जो 'मेफ्लाई' के नाम से भी जाना जाता था, 1911 में उड़ान भरने के पहले ही नष्ट हो गया।

अनम्य वायुपोत के जन्मदाता काउंट जेपेलिन का जर्मनी में अपने एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी ओगस्त फान पर्सीवाल से मुकाबला था जिसने एक लचकीली किस्म का वायुपोत तैयार किया था जो मुख्य रूप से सैनिक उद्देश्य के लिए और खेलकूद दिखाने के काम के लिए उपयोगी था। इसमें दो वायु-थैलियां लगी थीं जो ऊंचाई पर वातावरण के बढ़े हुए दबाव का मुकाबला करती थीं। पर्सीवाल के वायुपोत भी कई बार हवा से जमीन पर गिर चुके थे।

परन्तु काउंट जेपेलिन की मृत्यु के ठीक बीस साल बाद अब तक का सबसे प्रभावशाली जेपेलिन 'हाइडेनबर्ग', जो 800 फुट लम्बा था और 180 मील प्रति घंटा की चाल से चल सकता था, दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट हो गया—और वास्तव में उसके अंत के साथ ही यातायात के एक साधन के रूप में वायुपोत के प्रचलन का भी अंत हो गया। डा॰ एकेनर की चेतावनी के बावजूद इस पोत में, जिसमें गैस समाई 67 लाख घन फुट थी, सुरक्षा-पूर्ण हीलियम गैस भरने की जगह अत्यधिक ज्वलनशील हाइड्रोजन गैस भर दी गयी, क्योंकि अमरीका ने नाजी-जर्मनी को हीलियम गैस बेचने से इनकार कर दिया था। हिटलर ने बड़ी तेजी से जर्मनी को हथियारबंद करने का कार्यक्रम चला रखा था, और अमरीका को डर था कि हीलियम का उपयोग युद्ध संबंधी कार्यों के लिए किया जा सकता है। मई 1937 में यह वायुपोत लेकहर्स्ट में उतरते समय जल गया, और इस दुर्घटना में सैंतीस आदमियों की जानें चली गयीं।

इसी प्रकार अमरीका में भी कई गंभीर दुर्घटनाएं हुईं। वर्साई संधि के अंतर्गत जर्मनी से प्राप्त जेपेलिन 'शेनांडोआ' तथा अमरीकी नौसेना का वायुपोत 'ऐक्रोन' दोनों ही दुर्घटनाग्रस्त हुए और कई आदमी मारे गए। ब्रिटेन में वायुपोत की सबसे बड़ी दुर्घटना 1930 में 'आर-101' के साथ हुई। यह वायुपोत सरकारी काम से भारत की यात्रा पर चला, लेकिन उसे फ्रांस में उतरना पड़ा और आग लग जाने से यह नष्ट हो गया। इसमें अड़तालीस आदमी जल मरे, जिनमें भारत सचिव, एक एयर मार्शल और इसका डिजाइनर भी सम्मिलित था। इसमें भी हीलियम की जगह हाइड्रोजन गैस भरी गयी थी।

इन दुर्घटनाओं ने वायुपोत की ही मृत्यु घोषणा कर दी। परन्तु इस बीच हवाई यातायात के अन्य साधनों का भी विकास इतना हो चुका था कि हवा-से-हल्के यानों के जारी रहने का कोई तर्क सगत कारण भी नहीं था, क्योंकि इस प्रकार के यान धीमे चलते थे और खतरनाक भी थे। अब हवा-से-भारी यत्र के रूप में विमानों का प्रचलन आरम्भ हो रहा था।

प्राचीन काल से ही मनुष्य पक्षियों को उड़ते हुए देखता रहा है और उनकी नकल करने की भी कोशिश करता रहा है। पक्षियों का उड़ना और आराम से ऊपर आना, हवा में तैरना और झपट्टे मारना यह सब देखकर मनुष्य आश्चर्य करता रहा है। लेकिन उसके मन में यह भी प्रश्न उठा है कि पक्षी ऐसा किस तरह कर लेते हैं। उनका शरीर भी ठोस होता है, बिलकुल हमारे शरीर की ही भांति। बहुत से कीट-पतंग भी उड़ लेते हैं। वास्तविकता तो यह है कि पृथ्वी पर जो पांच लाख प्रकार के प्राणी पाए जाते हैं, उनमें आधे से अधिक उड़ सकते हैं और

पर पतंग को ऊंचा उठा सकता है। पतंग को ऊंचा उठाने के इस बल को 'उत्थापक बल' कहा जा सकता है जो पतंग के नीचे से हवा के तेजी से गुजरने के कारण उत्पन्न होता है। बच्चों को यह भी मालूम है कि अगर पतंग में एक पूंछ और बांध दी जाए तो हवा में उसका संतुलन ज्यादा सुगमता से हो सकता है। वास्तव में जब कोई विमान उड़ता है तो उस पर चार प्रकार के बलों की प्रतिक्रिया होती है: उत्थापक, यानी ऊपर की ओर उठाने वाला बल जो विमान के पंख की निचली सतह पर हवा के बहाव के कारण उत्पन्न होता है; खिंचाव, यानी हवा के प्रतिरोध के कारण पीछे की ओर खींचे जाने का बल; भार, जो कि गुरुत्वाकर्षण के कारण विमान को और नीचे की ओर खींचता है; तथा ठेल, यानी प्रणोद जो उसे आगे की ओर खींचता है—पतंग में यह काम डोर करती है और विमान में उसके

[illegible] विमान का चित्रण।

घूमते हुए पंखे यानी प्रोपेलर, जेट अथवा रॉकेट इंजन करता है। स्पष्ट है कि ठेल के बल को खिंचाव की अपेक्षा अधिक तेज होना चाहिए, और उत्थापक बल को भार से अधिक शक्तिशाली होना चाहिए। ऐसा होने पर ही विमान ऊपर उठ सकता है और आगे बढ़ सकता है।

[illegible]

मात्र 'इंजन' मनुष्य को प्राप्त था—इतनी मजबूत नहीं होतीं कि उनके आधार पर वह कृत्रिम पंखों को हिला सके और अपने भारी शरीर को ऊपर उठा सके। इसके अलावा पक्षियों की शरीर-रचना में कुछ ऐसी व्यवस्था होती है कि उनके पंख बड़ी आसानी से विभिन्न कोणों में हवा पर आघात कर सकते हैं और इस प्रकार न केवल अपने को हवा में बनाए रख पाते हैं, बल्कि आगे भी बढ़ लेते हैं। मनुष्य के लिए तो आज भी कोई ऐसी कृत्रिम यंत्र-व्यवस्था संभव नहीं हो सकती। पंख हिलाने वाली मशीनों पर आज भी कुछ वैज्ञानिक शोध करते रहते हैं, परन्तु जहां तक वैमानिकी का संबंध है उसका विकास बिलकुल भिन्न दिशा में हुआ है।

पंख हिलाकर उड़ने का प्रयास करने के सिद्धान्त से सबसे पहले उड़ने वाले व्यक्ति थे अंग्रेज वैज्ञानिक सर जार्ज कैली, जिन्हें आधुनिक वायुयान का वास्तविक पिता माना जा सकता है। हालांकि उनके समकालीन उन्हें सनकी माना करते थे।

1799 में छब्बीस वर्ष की आयु में कैली ने चांदी की एक छोटी-सी डिस्क पर उन विभिन्न बलों का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया था, जिन्हें हवा-से भारी उड़ान में सामना करना पड़ता है। उस डिस्क की पिछली तरफ उन्होंने एक ग्लाइडर विमान का भी चित्र बनाया था। इस प्रकार उन्होंने वायुगतिकी के संबंध में जो आरंभिक और आधारभूत शोधकार्य किया था, उसे इस डिस्क पर अंकित किया गया है। यह डिस्क अब लंदन के साऊथ केनसिंग्टन विज्ञान संग्रहालय में रखी हुई है। यांत्रिक उड़ान का सारा विकास उनके इन प्रयत्नों से ही फलीभूत हो सका है। अपने सैद्धान्तिक कार्य को उन्होंने व्यावहारिक रूप भी दिया और 1804 में एक ग्लाइडर का नमूना भी तैयार किया था। इसे पहला वास्तविक विमान माना जा सकता है। बाद में उन्होंने एक ग्लाइडर बनाया और उसे उड़ाया भी था। 1809 में उन्होंने एक प्रबन्ध लिखकर हवा-से भारी वस्तु के उड़ने के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने का प्रयास किया था। उन्होंने लिखा है कि—"विमान की मूल डिजाइन एक ऐसे पक्षी के रूप में होनी चाहिए जिसके पंख कड़े और स्थिर रहते हों। जिस दिन से लोगों को यह मालूम हो जाएगा कि यांत्रिक उड़ान संभव है उस दिन से समाज में एक नये युग का सूत्रपात होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि हवा में यात्रियों और माल का परिवहन बीस से सौ मील प्रति घंटा के वेग से बड़ी अच्छी तरह से किया जा सकेगा और यह जल परिवहन से अधिक सुरक्षित सिद्ध होगा। भावी विमान के लिए एक उपयुक्त इंजन का विकास किया जाना आवश्यक है। यह हो सकता है कि बोल्टन-वाट का भाप-इंजन इसके लिए उपयुक्त सिद्ध हो सके, परन्तु असली बात यह है कि इंजन को हल्का होना
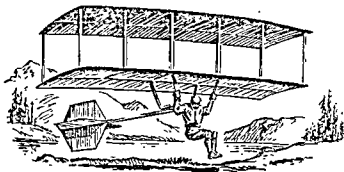
शेन्यूट का ग्लाइडर (1890)
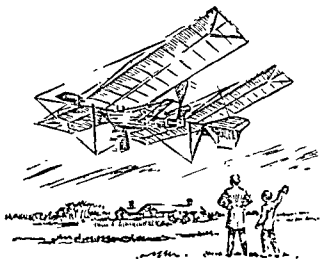
मोने का पैट्रोल चालित वायुयान जो अपनी पहली उड़ान में ही गिरकर नष्ट हो गया
(1890)

चाहिए। इसलिए संभव है कि किसी ऐसी विधि का विकास हो सके, जिसमें ज्वलनशील चूर्णों या द्रवों के अकस्मात दहन से हवा के विस्तार की सम्भावना सुनिश्चित होती है।"

कैली की भविष्यवाणी अक्षरशः सही सिद्ध हुई—परन्तु लगभग सौ वर्ष बीतने के बाद ही अंतर्दहन इंजन तैयार हो सका, जो वायुयान के लिए शक्ति का वह साधन बन सका, जिसकी उन्होंने कल्पना की थी।

कैली के आरंभिक कार्य के कारण ही इंगलैंड और फ्रांस में स्थिर पंख वाले वायुयान पर विचार प्रचलित हो सका। उन दिनों भाप-इंजन के अलावा कोई दूसरा मुख्य-चालक उपलब्ध नहीं था। बाद में 1840 में पंखवाले भाप-इंजन, जिन्हें 'विंड लोकोमोटिव' कहा जाता था, बने लेकिन विमान की दृष्टि से वे कभी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सके। फिर भी विलियम सैमुअल हेनसन और जोन स्ट्रिंगफैलो इन दो वैज्ञानिकों ने इस दिशा में ब्रिटेन में महत्त्वपूर्ण काम किया। फ्रांस में अल्फोंसे पीनो ने एक नमूना बनाया, जिसमें एक नियंत्रण स्तंभ और पाइलट के लिए शीशे का ढक्कन जैसी बहुत बाद में विकसित होने वाली चीजों का भी समावेश किया गया था। यदि पीनो पेट्रोल-इंजन के प्रचलन के समय तक जीवित रहता तो शायद उसका बनाया हुआ नमूना व्यावहारिक वायुयान का पहला नमूना बन सकता था। परन्तु उसने तीस वर्ष की आयु में निराशा और अस्वास्थ्य के कारण आत्महत्या कर ली। यह उससे कुछ समय पहले की बात है, जब डायमलर और बैंज ने अपनी पहली मोटर कारें बनाई थीं।

पीनो के बाद एक अन्य अंग्रेज वैमानिकी के शोध में आगे आया। ग्लासगो विश्वविद्यालय के विद्यार्थी पर्सी सिंकलेयर पिल्चर ने शुरुआत तो की एक भाप-चालित विमान डिजाइन करने से, लेकिन बाद में उन्होंने यह विचार छोड़ दिया और ग्लाइडरों के साथ प्रयोग करना आरंभ किया। वे चार अश्वशक्ति के एक पेट्रोल-इंजन का निर्माण कर रहे थे कि इसी बीच एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गयी—उनका ग्लाइडर स्टैंडफोर्ड पार्क के पास गिरकर नष्ट हो गया। मशीनगन के आंग्ल-अमरीकी आविष्कारक सर हीरेम मैक्सिम ने भी भाप-चालित विमान बनाने का प्रयास किया। उन्होंने 150 अश्वशक्ति के दो बड़े भाप-इंजनों के आस-पास एक विमान का ढांचा तैयार किया। जब ढांचा तैयार हो गया तो उन्होंने एरिथ नामक स्थान में उसे उड़ाने के लिए पटरियों पर चढ़ाया, परंतु पटरी से अलग होते ही विमान गिर पड़ा और इस प्रकार इस प्रयोग का भी अंत हो गया। एक फ्रांसीसी आक्टाव शेन्यूट ने एक पंख वाले ग्लाइडर से लेकर छः पंख वाले ... किए। एक अमरीकी
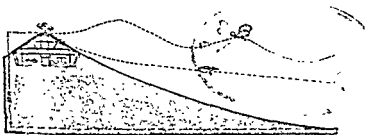
लिलियंथाल के ग्लाइडिंग संबंधी प्रयोगों का रेखांकन

विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सैम्युअल पीअरपोंट लांगले ने अमरीकी थल-सेना के लिए एक सीट वाला और पेट्रोल से चलनेवाला विमान बनाया। इस विमान को एक जहाज पर से उड़ने की योजना थी। लेकिन पहली ही परीक्षण उड़ान में विमान पानी में आ गिरा और चालक को मल्लाहों ने किसी तरह बचाया।

एक फ्रांसीसी इंजीनियर क्लेमेंट आडर को पैंसठ पौंड भारवाले और तीस अश्वशक्ति वाले एक छोटे भाप-इंजन के निर्माण में सफलता मिली। फ्रांसीसी युद्ध-मंत्रालय ने उनके प्रयोग कार्य में सहायता प्रदान की थी। इनका बनाया हुआ तीसरा विमान वास्तव में 300 गज तक उड़ा, लेकिन फिर एक हवा के झोंके से जमीन पर आ गिरा। इसके बाद अधिकारियों ने इनके आविष्कारों पर धन खर्च करना बन्द कर दिया।

ये सभी प्रयास 1890 के दशक में किए गए। उसी समय एक अत्यन्त प्रतिभाशाली जर्मन इंजीनियर ओटो लिलियंथाल ने बहुत-से ग्लाइडिंग सम्बन्धी प्रयोग भी किए। उन्होंने अपने भाई गुस्ताव की सहायता से कई प्रयोगात्मक विमान बनाए। चालीस वर्ष की आयु में लिलियंथाल ने अपने कुछ बड़े विचित्र और खतरनाक प्रयोग आरम्भ किए। आरम्भ में अपने घर के आंगन में ऊंचाई से कूदने का अभ्यास करने के बाद उन्होंने शहर से बाहर थोड़ी-सी जमीन खरीद ली। जिसमें पचास फुट ऊंचा एक टीला भी था। यहां उन्होंने लकड़ी और कनवास से बनाए ग्लाइडरों में अपने को बांधकर टीले की ऊंचाई से कूदकर उड़ने के कई प्रयोग किए। अपनी इन उड़ानों से प्रोत्साहित होकर उन्होंने और भी बड़ा ग्लाइडर बनाया तथा अधिक ऊंचे टीलों पर से कूदने का प्रयास जारी रखा। अन्त में वे अपने ग्लाइडरों के सहारे हवा में उड़ने में सफल हुए।

पांच साल के दौरान उन्होंने इस प्रकार की लगभग दो हजार उड़ानें कीं। इनमें से अन्तिम कुछ उड़ानें उन्होंने एक सौ फुट ऊंची पहाड़ी पर से की और

एक हजार फुट की दूरी तक उड़ान भरी। इस समय उनका भाई साथ रहता था और स्टाप-वाच लेकर उन उड़ानों के समय दर्ज करता रहता था।

ऐसी ही एक उड़ान करते समय 1896 के अगस्त महीने की एक सुबह उनकी मशीन हवा के एक तेज झोंके में फंस गयी और जमीन पर आ गिरी। लिलियथाल को घातक चोटें आयीं। अपनी मृत्यु शैया पर उनके अंतिम शब्द थे, "हमें कुर्बानियां तो करनी ही होंगी।"

जो वैज्ञानिक हवा-से-भारी यंत्र के उड़ने के प्रयोग कर रहे थे, उन्हें ओटो लिलियथाल की दुखद मृत्यु अपने पथ से विचलित नहीं कर सकी। उन्होंने दूने उत्साह के साथ अपना काम जारी रखा। यह बात ओरविल और विलबर राइट नामक दो भाइयों के बारे में विशेष रूप से कही जा सकती है। यह एक अमरीकी पादरी के बेटे थे और ओहाइयो राज्य में डेटन नगर में साइकिल मरम्मत की एक छोटी-सी दुकान चलाते थे। उड़ने में इन दोनों भाइयों की बड़ी गहरी रुचि थी, लेकिन इन्होंने लिलियथाल के ग्लाइडरों जैसे कमजोर यंत्रों के प्रयोग से अपनी जान खतरे में डालने की बजाए अधिक गंभीरता से काम करना ठीक समझा। पहले इन्होंने बड़े यत्न के साथ यूरोप और अमरीका में तब तक हुए यांत्रिक उड़ान सम्बन्धी प्रयोगों के बारे में अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्र कीं और ध्यानपूर्वक उनका अध्ययन करके पता लगाया कि इस दिशा में किस-किस ने क्या-क्या गलती की थी। उदाहरणार्थ अपने अध्ययन के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लिलियथाल ने पार्श्विक स्थिरता की व्यवस्था अपने यानों में नहीं की थी, इसलिए उन्हें अंत में अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। उन्होंने वायुयान की अपनी डिजाइन में ऐसी व्यवस्था करने का निश्चय किया, जिससे चालक कुछ तारों को खींचकर पंखों को ऊंचा-नीचा उठा सके। राइट बंधुओं को अध्ययन और प्रयोग में कई साल लग गए, तब कहीं जाकर उन्होंने निश्चय किया कि अब हम पूरे आकार का एक मानववाही विमान बना सकते हैं। उन्होंने अपने डिजाइन का परीक्षण करने के लिए कई छोटे-छोटे नमूने बनाए और काफी बड़ी संख्या में ग्लाइडर भी तैयार किए। यही नहीं उन्होंने अपने यान पंखों के आकार का परीक्षण करने के लिए एक वायु सुरंग भी बनाई। अंत में उन्होंने अपनी साइकिल की दुकान के पिछवाड़े अपना निजी पेट्रोल इंजन तैयार किया। इस इंजन का वजन एक सौ बावन पौंड था और यह बारह अश्वशक्ति तक प्राप्त कर लेता था, जो कि दोनों भाइयों की आशा से अधिक थी। इसके बाद उन्होंने प्रोपेलर के ठीक आकार-प्रकार की डिजाइन तैयार की, जो कि सबसे कठिन काम था। दो पंख वाले इस विमान में पंखों की दूरी
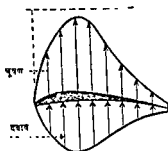
विमान के पंख को प्रभावित करने वाले बल ।

लम्बाई चालीस फुट थी। इसमें आगे की ओर एक उत्थापक रडर लगा था और पूछ के रडर में दो विच्छफलक लगे थे। दोनों पंखों में छः फुट की दूरी थी। इंजन ठीक बीच में पंख के ऊपर फिट किया गया था, जबकि चालक को केन्द्र से थोड़ा बाएं हटकर पेट के बल लेटना पड़ता था, ताकि मशीन का संतुलन कायम रह सके। इस विमान में दो प्रोपेलर लगे थे, जिन्हें पंखों के पीछे लगाया गया था ताकि उनके कारण विमान को उसी प्रकार की ठेल प्राप्त हो सके, जैसी जहाज को उसके पीछे लगे एक पंखे से होती है।

1903 की शरद् में राइट-बन्धुओं की यह मशीन अपनी पहली उड़ान के लिए तैयार हुई। उड़ने के लिए उत्तरी केरोलिना राज्य में किटीहॉक स्थान का समुद्री किनारा चुना गया। यहीं पिछले कुछ सालों में राइट-बन्धुओं ने अपने ग्लाइडरों का भी परीक्षण किया था। जब इस विमान को चालू किया तो पहला प्रयास असफल रहा और विमान को कुछ क्षति भी पहुंची। मरम्मत के लिए विमान को वापस शेड में पहुंचाया गया और अंत में 17 दिसम्बर, 1903 को सुबह फिर से उड़ाने के लिए इसे पटरियों पर फिट किया गया। उस समय 24-27 मील प्रति घंटा की रफ्तार से ठंडी हवा बह रही थी। कुछ स्थानीय व्यक्ति—चार आदमी और एक लड़का इस महान् घटना के प्रथम दर्शकों के रूप में वहां मौजूद थे। यह उड़ान सफल रही ?

दस साल बाद ओरविल राइट ने लिखा, "इन पिछले दस सालों में की गयी अपनी हजारों उड़ानों से जो जानकारी और दक्षता मुझे प्राप्त हुई उसको देखते हुए आज भी मैं अपनी उस विचित्र-सी मशीन से सत्ताईस मील की रफ्तार वाली हवा में उड़ान भरने की बात सोचते हुए घबरा उठता हूं और शायद ही उस

प्रयास को दुबारा करना चाहूंगा, हालांकि मुझे पता है कि मशीन पहले भी उड़ चुका हूं और इसमें खतरा नहीं है। इन वर्षों के अनुभव के बाद आज मैं बड़े
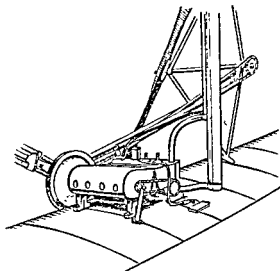
राइट बंधुओं का 4 सिलिंडर वाला विमान (1903)

आश्चर्य से अपनी उन आरंभिक उड़ानों के बारे में सोचता हूं कि किस प्रकार हमने बिल्कुल नयी किस्म के यन्त्रों के साथ इन प्रयोगों का साहस किया था। फिर भी जो नाप-जोख और जांच-पड़ताल हमने की थी, और जिस तरह का पहला यान हमने तैयार किया था और उस पर हमें विश्वास था, हमने हवा के दबाव का सारणियों द्वारा अध्ययन किया था और महीनों बाद सावधानी से प्रयोग और शोध का कार्य किया था। इसके अलावा हमने अपने ग्लाइडरों को हवा में संतुलित रखने के जो प्रयोग तीन साल तक किए थे, उनके आधार पर हम आश्वस्त थे कि हमारी मशीन ऊपर उठ सकेगी और हवा में बनी रह सकेगी तथा थोड़े से अभ्यास से उसे सुरक्षापूर्ण से उड़ाया जा सकेगा।"

उस ऐतिहासिक सुबह में ओरविल मशीन पर चढ़ा और पेट के बल लेटकर उसने नियंत्रकों को संभाल लिया। इंजन चालू किया गया और कुछ मिनट तक गर्माने के लिए चालू रखा गया। इसके बाद ओरविल ने उस तार को छोड़ दिया, जिससे मशीन प्रस्थान-रेल पर टिकी हुई थी। अचानक विमान तेजी से हवा में

राइट बन्धुओं द्वारा अपने प्रयोगों में प्रयुक्त विमान चालू करने की पटरियां

आगे बढ़ा। कुछ सेकंड तक विलवर उसके साथ-साथ दौड़ा और पंख पकड़कर उसको रेल पर बनाए रखने की कोशिश करता रहा। रेल पर चालीस फुट तक लुढ़कने के बाद विमान हवा में ऊपर उठ गया। यह उड़ान कुछ अस्थिर-सी थी। हवा उसे कभी नीचे और कभी ऊपर करती थी। कुल 12 सेकंड की उड़ान के बाद और 120 फुट तक उड़ने के बाद विमान जमीन पर आ गया।

इस सम्बन्ध में ओरविल राइट ने लिखा है कि, "फिर भी यह संसार के इतिहास में पहली उड़ान थी, जिसमें एक आदमी को लेकर उड़न-कल स्वयं अपनी शक्ति से हवा में उड़ी थी और रफ्तार में किसी तरह की कमी हुए बिना आगे बढ़ सकती थी तथा फिर आराम से जमीन पर उतर आयी थी।"

जिन पांच दर्शकों ने इस घटना को देखा, उन्होंने शायद इसके क्रान्तिकारी महत्त्व को नहीं पहचाना। उसके बाद कुछ और उड़ानें भरी गयीं। आखिरी उड़ान में विलवर ने मशीन चलाई। यह उड़ान एक मिनट तक चली और इसमें 850 फुट तक की दूरी तय हुई। जब विमान नीचे उतर आया तो अचानक दिसम्बर की तेज हवा का झोंका आया और उसे खासी क्षति पहुंचा गया।

आश्चर्य की बात है कि इस महान् प्रयोग की सफलता के बारे में एक स्थानीय अखबार के अलावा किसी ने इसे कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। उस अखबार ने भी पूरी घटना का खासा काल्पनिक और तोड़ा-मरोड़ा हुआ विवरण प्रकाशित किया था। एक महीने बाद 'न्यूयार्क हेरल्ड' ने इस सम्बन्ध में एक छोटा-सा समाचार प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था—'उड़नेवाली मशीन' परन्तु इस समाचार में भी कोई ढंग का विवरण नहीं था।

राइट बन्धु अभी प्रचार में रुचि नहीं लेना चाहते थे। उनका ध्यान अभी इससे भी बड़ी और मजबूत एक और मशीन बनाने पर केन्द्रित था। जब यह नया विमान तैयार हो गया, तो उन्होंने इसमें प्रदर्शन के समय पत्रकारों को आमंत्रित किया, लेकिन दुर्भाग्यवश ऐन मौके पर इंजन में कुछ खराबी हो गयी और

उड़ान को रद्द करना पड़ा। इसके बाद पुनः पत्रकारों से मुक्त होकर दोनों भाई शान्तिपूर्वक अपने परीक्षण कार्य में जुट गए।

इसके तीन साल बाद ही विज्ञान सम्बन्धी एक लोकप्रिय पत्रिका 'द साइंटिफिक अमेरिकन' ने राइट बन्धुओं की इस सफलता की पूरी कहानी प्रकाशित की। पत्रिका ने लिखा, "आविष्कार के इतिहास में शायद ही ऐसा कोई उदाहरण मिलेगा, जब किसी ने इतने आडम्बरहीन ढंग से इतने बड़े आविष्कार को सफलतापूर्वक संभव कर दिखाया हो जैसा कि राइट बन्धुओं ने डेटन नगर में किया। उन्होंने अपने प्रथम सक्षम आविष्कार से एक नये युग का श्रीगणेश किया है।"

कुछ पत्रकारों ने भी अखबार के अंश बढ़ाए। विलबर बन्धुओं को राष्ट्रीय वीरों का सम्मान प्राप्त हुआ।

अब बहुत थोड़े समय में ही संसार के अधिकांश देशों में वायुयान बनाए गए और उड़ाए गए। इनमें फ्रांस सबसे आगे था 1909 तक तो फ्रांस में एक वैमानिकी विद्यालय की भी स्थापना हो गयी, जिसमें विमानों के डिजाइनकार, निर्माता और विमान-चालक प्रायः एकत्र होते थे। इसका एक पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया जो खासा अस्पष्ट था और जिसमें व्यावहारिक उड़ान को सम्मिलित नहीं किया गया था, क्योंकि उस समय अधिकांश विमान एक सीट वाले होते थे और विद्यार्थियों को उड़ने की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। उस समय उड़ान मुख्य रूप से एक तरह का खेल ही थी और बहुत कम लोगों को ऐसा विश्वास था कि यह कभी यात्रियों के परिवहन का माध्यम भी बन सकेगी।

राइट बंधुओं की ही भांति इस क्षेत्र में अन्य अग्रगामी आविष्कारक स्वयं अपने विमान उड़ाते थे और उनमें नये-नये सुधार करते रहते थे। सांतोस-डूमोंट ने वायुपोत बनाने का काम छोड़कर विमान में रुचि लेना शुरू कर दिया। उनका पहला विमान डिब्बे की किस्म का एक मोनो-प्लेन था और बांस तथा रेशम के कपड़े से बनाया गया था। इस विमान को उन्होंने बड़ी सफलता से उड़ाया और 1909 में साठ मील प्रति घण्टा की रफ्तार का रिकार्ड भी कायम कर दिया। एक एंग्लो-फ्रेंच खिलाड़ी हेनरी फार्मा तथा वोईसी और फरबेर, ब्लेरियो और देलाग्राजे नामक फ्रांसीसी ने एक के बाद एक हवाई-जहाज बनाए और परीक्षण के रूप में उन्हें उड़ाया। इन्होंने इसमें काफी पैसा भी बर्बाद किया और हर बार अपनी जान की बाजी लगाई, लेकिन संयोग से हरबार इनकी मशीनें जमीन पर आ गिरती थीं और लोहा, लक्कड़ तथा केनवस के ढेर में बदल जाती थीं। परन्तु सबसे अच्छी बात तो यह होती थी कि इस बीच बहुत कम घातक दुर्घटनाएं हुईं।

हैंडले पेज (?) सिकोर्स्की का 1914 से पहले का चार इंजनों वाला विमान (400 अश्वशक्ति)
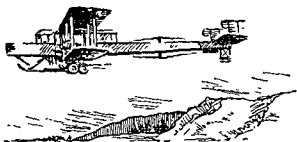
लुई ब्लेरियो नामक एक बत्तियों के निर्माता ने 'एलेरान' यानी सहपक्षी का आविष्कार किया। यह एक तख्त के रूप में था और इसे कब्जों के जरिये पंख के किनारे पर लगा दिया जाता था। इससे पार्श्विक स्थिरता प्राप्त करने में सहायता मिलती थी और यह राइट बन्धुओं के तार तानने की सुविधा से बेहतर सिद्ध हुआ। ब्लेरियो भी लगभग उतनी ही दुर्घटनाओं में फंसा, जितनी का ड्यूमोंट को सामना करना पड़ा था। लेकिन हर बार वह बच गया। एक दुर्घटना में बीच हवा में उसकी मशीन में आग लग गयी और बड़ी मुश्किल से उसे मलबे से बाहर खींचकर निकाला गया। उसका एक पैर बुरी तरह से जल गया था। परन्तु फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी और इंग्लिश-चैनल को पहली बार विमान द्वारा पार करके उसने 'डेलीमेल' द्वारा घोषित एक हजार पौंड का पुरस्कार भी जीत लिया।

यह सफलता उसने 25 जुलाई 1909 को अपने एक मोनोप्लेन 'ब्लेरियो' के जरिये प्राप्त की थी। इस विमान में एक बहुत बड़ा पिछला तल लगा था, और यह उत्थापक यंत्र और ऊर्ध्वाधर रडर से युक्त था। इसके पंख का फैलाव पच्चीस फुट छ: इंच था और पंख के नीचे पच्चीस अश्वशक्ति का एक अंजानी इंजन लगा था। कालाई से डोवर तक चैनल की 24 मील की दूरी पार करने में उसे आधे घंटे का समय लगा। इस अवसर पर लंदन के अखबारों ने लिखा कि अब इंग्लैंड एक द्वीप नहीं रह गया है और चैनल के दोनों ओर के सैनिक अधिकारियों ने युद्ध में विमान के उपयोग की संभावनाओं का गंभीरता से अध्ययन शुरू किया।

इस साहसिक अभियान में ब्लेरियो का एक प्रतिद्वंद्वी था—युवा इंजीनियर ह्यूबर्ट लाथाम। लेकिन उसका विमान चैनल में जा गिरा और वह दौड़ से हट

गया। लेकिन कुछ महीने बाद उसने 3,300 फुट की ऊंचाई तक अपना विमान ले जाकर एक रिकार्ड कायम किया। परन्तु साल भर के अंदर ही एक फ्रांसीसी विमान-चालक लेगान्यू ने 10 हजार 230 फुट की ऊंचाई तक पहुंचकर एक रिकार्ड कायम किया। उन दिनों विमानों के जो थोड़े से डिजाइनकार बड़े और अधिक शक्तिशाली यात्री-विमानों की आवश्यकता समझते थे, उनमें एक तेईस वर्षीय रूसी युवक इगोर सिकोर्स्की भी था। उसने किसी तरह पिट्सबर्ग के एक उद्योगपति को राजी करके 1912-13 में एक विमान का नमूना तैयार किया, जो तब तक बने विमानों में सबसे बड़ा था। यह पहला विमान था, जिसमें चार इंजन लगाए गए थे, जिनमें से प्रत्येक सौ अश्वशक्ति का था। इसके पंखों का कुल फैलाव बानवे फुट था और कुल वजन नौ हजार पौंड था। चालक का काकपिट् ढका हुआ था और उसमें एक सहायक चालक के भी बैठने की व्यवस्था की गयी थी और नियन्त्रकों की भी दोहरी व्यवस्था थी। इसके अलावा बड़े शानदार ढंग से सजा हुआ एक कमरा था, जिसमें सोलह यात्री बैठ सकते थे। यहां तक कि यात्रियों के लिए एक टॉयलेट की भी व्यवस्था की गयी थी। ऐसे दो विमान प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ तक सफलतापूर्वक उड़ाए जाते रहे। बाद में सिकोर्स्की को इसी डिजाइन पर चार इंजन वाले बम-वर्षकों का एक बेड़ा तैयार करने का आदेश दिया गया। प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेने वाले ये अपने ढंग के एकमात्र विमान थे।

अन्य पश्चिमी देशों में भी विमान को खेल-कूद की एक मशीन से विकसित करके यातायात के एक विश्वसनीय साधन के रूप में प्रचलित करने के उद्देश्य से काफी काम हुआ, क्योंकि लड़ाई के दौरान सरकारों ने वायुयानों के विकास के लिए पर्याप्त धन और साधनों की व्यवस्था कर दी थी। फिर भी सैनिक विमान का समारम्भ बहुत सामान्य ढंग से हुआ। आरम्भ में पहले इन्हें सैनिक टोह के काम में लाया जाता था। बाद में कुछ कमांडरों को विचार सूझा कि विमान-चालकों को रिवाल्वर दे देने चाहिएं, ताकि वे शत्रु के विमानों पर गोली चला सकें। बाद में कुछ डिजाइनरों ने काकपिट् में मशीनगनें फिट करवा दीं। ब्रिटिश वाइकर्स मशाक् विमान पहला ऐसा विमान था, जिसके अगले हिस्से में स्थायी रूप से मशीनगन लगाई गयी थी।

विमानों से बमवर्षा का कार्य भी शुरू हुआ। पहले विमान-चालक ऐसे घरेलू बम एक-दूसरे पर फेंका करते थे, जो खाने पीने की चीजों के खाली डिब्बों में बारूद वगैरह भरकर बनाए जाते थे। कुछ दिनों तक विमानों से नीचे शत्रुओं के सैनिकों पर इस्पात के तीर भी फेंके जाते रहे। ऐसा कोई तीर यदि किसी को

लग जाना था तो सिर से पूरा उसके शरीर में घुस जाता था। लेकिन फिर जल्दी ही अधिक बड़े बम-वर्षक तैयार होने लगे। बम-वर्षक के लिए बाइप्लेन या दो डैनों वाले जहाज पसन्द किए जाते थे। 1914 से 1918 के बीच वायुयान की रफ्तार सत्तर-अस्सी से डेढ़ सौ मील प्रति घंटा और इससे भी अधिक तक पहुंच गयी। वायु से ठण्डे होते रहने वाले इंजनों का विकास प्रति अश्वशक्ति 4 पौंड से 1.9 पौंड तक हुआ और ऊंचाई की सीमा का औसत 7 हजार फुट से 30 हजार फुट तक हो गया। ब्रिटिश रॉयल फ्लाइंग कोर्स ने, जो बाद में रॉयल एयरफोर्स के नाम से जानी जाने लगी, 1914 में अपना काम शुरू किया, तब इसके पास 179 विमान थे और रॉयल नेवल-एयर सर्विस के पास 93 विमान थे। परन्तु युद्ध के अन्त में रॉयल एयर फोर्स के पास 22 हजार से अधिक विमान हो गए थे।

विमानों से यात्री और डाकसेवा भी युद्ध के शीघ्र बाद आरम्भ हो गयी, यहां तक कि 1920 में विमानों की कुल उड़ान लगभग तीस लाख मील आंकी गयी थी। वायुगति की अधिक अच्छी समझ के प्रमाण के रूप में जर्मन इंजीनियरिंग प्रोफेसर ह्यूगो-जंकर्स और एक रूस डिजाइनकार एंटन फोकर ने पहली बार धातु के सम्पूर्ण विमान बनाए। इगोर सिकोर्स्की ने भी, जो अब अमरीका में चले गए थे, इस प्रकार के विमान 1924 में बनाए। कुछ साल बाद दो सौ मील प्रति घन्टा की रफ्तार वाले विमान अमरीका में चालू हुए। बहुत जल्दी ही उड्डयन ने एक बड़े उद्योग का रूप ले लिया और यह नौका और रेल से होने वाले परिवहन का मुकाबला करने लगा।

कुछ असफल प्रयासों के बाद पहली बार दो अंग्रेजों ने विमान से अटलांटिक महासागर पार किया। कैप्टन जोन अल्कोक और लेफ्टिनेंट आर्थर विटेन-ब्राउन ने जून 1919 में अपने एक विकर्स विमान में आयरलैंड से न्यूफाउंडलैंड से यह उड़ान भरी और 16 घण्टे 12 मिनट में 1,880 मील की दूरी पार की। इसके बाद मई 1927 तक अटलांटिक पार की कोई भी उड़ान नहीं की गयी, जब कैप्टन चार्ल्स लिंडबर्ग ने अमरीका के लोग आइलैंड से फ्रांस के लेबूर्बे तक की 3,000 मील की यात्रा 33 घण्टे से कुछ ही अधिक समय में पूरी की थी। उन्होंने स्पिरिट आफ सेंट लुई नामक एक मोनोप्लेन में 220 मील प्रति घण्टे की रफ्तार से अकेले ही अपनी यह प्रसिद्ध उड़ान सम्पूर्ण की थी। एक साल बाद दो जर्मनों और एक अंग्रेज ने सफलतापूर्वक इस प्रकार की यात्रा सम्पूर्ण की। इसके भी ग्यारह साल बाद एक अमरीकी विमान ने यात्रियों सहित अमरीका से यूरोप की यात्रा की। परन्तु यूरोप और अमरीका की नियमित व्यापारिक विमान-यात्रा द्वितीय महायुद्ध के बाद ही सम्भव हो सकी।

मूलभूत रूप से हवा से भारी मशीनों के माध्यम से उड़ने की विधि इस शताब्दी के पूर्वार्ध तक वैसे ही जारी रही। निःसन्देह कई महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए। विमानों के आकारों में दस गुना तक वृद्धि हुई। आरम्भिक मशीनों की तुलना में उनकी भारवाहन क्षमता में सौ प्रतिशत विकास हुआ। इस प्रकार इंजन की शक्ति, रफ्तार, यात्रियों को प्राप्त सुविधाएं काफी बढ़ीं। परन्तु सिद्धान्त रूप से सन् 1950 का विमान भी हवा में लगभग उसी प्रकार उड़ता था, जिस प्रकार राइट बन्धुओं का पहला विमान उड़ा था।

इसके बाद ही कहीं जाकर मुख्य विमानों के लिए शक्ति और उड़ान की बिलकुल दो भिन्न प्रणालियों का विकास सम्भव हुआ—जेट प्रणोदन और ऊर्ध्वाधर उठनेवाले विमान। फिर भी इन दोनों नये आविष्कारों की शुरुआत तकनीकी इतिहास में बहुत पहले हुई थी। हीरो की नन्ही भाप टरबाइन वास्तव में एक जेट-इंजन ही थी। जब भाप हवा या और कोई गैस किसी नलकी से निकलकर उस वस्तु को आगे की ओर ठेलती है तो उसे 'जेट-प्रक्रिया' कहते हैं। इस सम्बन्ध में एक सामान्य भ्रांत धारणा है कि जेट वस्तु को आगे ठेलती है और जेट-विमान आसपास की वायु को ठेलकर आगे बढ़ता है। वास्तविकता यह है कि जेट न्यूटन के गति सम्बन्धी प्रसिद्ध तृतीय नियम के अनुसार बन्दूक के प्रतिक्षेप या रिकॉयल की तरह चलता है। एक फ्रांसीसी इंजीनियर रेने लोरां ने पहली बार 1913 में जेट-प्रणोदन के मूलभूत सिद्धान्त का वर्णन किया था और इसके लिए पेटेण्ट भी प्राप्त किया था। रॉकेट-प्रणोदन भी कई माने में इसके समान ही है,लेकिन इससे अधिक पुराना है। यह विचार सदियों पुराना है कि रॉकेट से विमान चलाया जाता है। कहा जाता है कि सन् 1500 के आसपास वानहू नामक एक चीनी ने दो बड़ी पतंगों को आपस में जोड़कर उन्हें सैंतालीस रॉकेटों से उड़ाया था और इसी प्रयोग में अपनी जान से हाथ भी धो लिया था। सर विलियम कांग्रीव ने एक रॉकेट-गन बनाई थी, जिसको नेपोलियन के समय में कई युद्धों में प्रयुक्त किया गया था। रूस में प्रोफेसर त्सिओल्कोवस्की ने, जर्मनी के हरमन ओबेर्थ ने और अमरीका के रावर्ट एम० गोडार्ड ने रॉकेट विज्ञान से सम्बन्धित इस शताब्दी के आरम्भिक २५ वर्षों में कई शोध-प्रबन्ध लिखे थे।

परन्तु रॉकेट में, जिसके बारे में इस अध्याय के अन्त में हम फिर विचार करेंगे, कुछ ऐसी विशेषताएं भी हैं, जो सभी जेट इंजनों की अपेक्षा अन्य कई कार्यों के लिए उपयुक्त सिद्ध होती हैं। हालांकि यह दोनों ही प्रतिक्रियाएं सिद्धान्त के रूप में जानी जाती हैं। परन्तु इससे सम्बन्धित तकनीकी विकास पिछड़ा हुआ है। सबसे पहले जेट-प्रणोदन तब तक प्रभावकारी नहीं हो सकता, जब तक बहुत तेज

रफ्तार प्राप्त न कर ली जाए, और जब तक ऐसा विमान नहीं बन गया, जो 400 मील प्रति घण्टा से अधिक की रफ्तार सहन कर सकता था, तब तक इसमें व्यावहारिक रुचि नहीं उत्पन्न हो सकी। दूसरे-जेट, प्रणोदन बहुत उच्च तापमान पर ही काम करता है। इसलिए यह भी आवश्यक था कि ऐसी मिश्रित धातु का विकास हो सके जो अत्यधिक ताप को सहन करने में समर्थ हो।

फिर भी फ्रैंक विटल नामक एक युवा अंग्रेज विमान-चालक का दृढ़ मत था कि अब इस प्रश्न पर बिलकुल दूसरी तरह से विचार किया जाना चाहिए। वह 1927 में क्रानवेल स्थित रॉयल एयरफोर्स कालेज का एक बीस वर्षीय विद्यार्थी था। उसने अपने शोध प्रबन्ध के लिए विषय चुना—'विमानों की डिजाइनों का भावी विकास।'

इसमें उसने लिखा कि विमान से 500 मील प्रति घण्टा की रफ्तार हासिल की जा सकती है। हालांकि उन दिनों ब्रिटिश लड़ाकू विमानों की रफ्तार 200 मील प्रति घण्टा से भी कम थी। उसने अत्यधिक ऊंचाई पर वायुयान का भी जिक्र किया। इसके अलावा उसने सामान्य पिस्टन-इंजनों की जगह प्रोपेलरों को चलाने के लिए रॉकेट इंजन या गैस टरबाइन जैसे किसी साधन का भी सुझाव रखा। जेट-प्रणोदन के लिए गैस टरबाइन के उपयोग का विचार उसे उस समय नहीं सूझा था। लेकिन कुछ ही महीनों बाद उसने एक ऐसे इंजन पर काम शुरू कर दिया। सिलिंडर में पिस्टनों को बार-बार विस्फोट की व्यवस्था करने के बजाए एक दहन-कक्ष में किसी सस्ते तेल को लगातार जलाने की व्यवस्था की जाए और इस प्रकार फैलने वाली गैसों को टरबाइन के पंखों पर इस तरह से डाला जाए कि वह तेजी से घूमने लगें। इसके साथ ही उसने इस व्यवस्था पर भी जोर दिया कि संपीडित गैसें जेट-पाइप के जरिये पिछली ओर से बिलकुल तूफानी गति से बाहर निकलें और इस प्रकार न्यूटन के गति-सम्बन्धी तृतीय सिद्धान्त के अनुसार विमान को आगे की ओर ठेलें। यह टरबाइन एक ऐसे संपीडक को भी चलाता है जो विमान के अगले हिस्से से हवा को खींचता है और उसको दहन-कक्ष में भेजने के पहले संपीडित करता है। विटल ने इसके लिए पेटेंट का आवेदन 1930 में किया, इसे 1932 में प्रकाशित किया गया और 1934 में इसकी अवधि समाप्त हो गयी, क्योंकि उसके इस आविष्कार की किसी को जरूरत नहीं थी और कोई भी उसमें पैसा लगाने को तैयार नहीं था। वायुसेना मंत्रालय ने भी उसके इस आविष्कार में कोई रुचि नहीं ली। परन्तु दो साल बाद विटल को कुछ समर्थन प्राप्त हुआ और लंदन में धन एकत्र करने के लिए एक कम्पनी का गठन किया गया। वायुसेना मंत्रालय ने भी सशोकपूर्वक

उसे कुछ दिनों की छुट्टी प्रदान की ताकि वह अपनी योजना पूरी कर सके। परन्तु 1939 जब में युद्ध के बादल मंडराने लगे तो उसे एक जेट-विमान का नमूना बनाने का कन्ट्रैक्ट दिया गया।

इस जेट-इंजन का निर्माण बड़े गोपनीय ढंग से सोलह व्यक्तियों के एक दल ने किया, जिसमें से अधिकांश की आयु तीस वर्ष से कम थी। अंत में मई 1941 में ग्लोस्टर कारखाने में इस नये इंजन को लगाकर पहली बार एक प्रयोगात्मक विमान तैयार किया गया। इस इंजन का गुप्त नाम ई-28 था। इस उड़ान को इतना गुप्त रखा गया कि इसकी बाहर कहीं चर्चा तक नहीं हो सकी। इंजन ने बिलकुल ठीक-टाक काम किया। जब विमान उड़ा तो सभी लोग चकित रह गए।

इस नये विमान के बारे में इतनी अधिक गोपनीयता बरती गयी थी कि रॉयल एयर-फोर्स के जिन अधिकारियों ने इसका पहला प्रदर्शन देखा, उन्हें भी इस सम्बन्ध में पहले से कुछ ज्ञात नहीं था। बाद में इनमें से एक अधिकारी ने कैंटीन में चाय पीते समय आश्चर्य से कहा—"वह विचित्र मशीन इतनी तेजी से उड़ी कि मैं आंखों पर विश्वास नहीं कर सका। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसमें कोई प्रोपेलर भी नहीं लगा था।"

जर्मनी में भी कुछ इसी प्रकार का काम आगे बढ़ा। वहां जेट-इंजन पर शोध का काम एक युवा इंजीनियर पाब्सट फान ओहाइन ने आगे बढ़ाया। उसने अपने डिजाइन के आधार पर हाइन्केल विमान कारखाने को राजी करके एक नमूना 1936 में तैयार कराया। अंत में तीन वर्ष बाद युद्ध के आरंभ होने के कुछ ही समय पूर्व एक हाइन्केल विमान ने अपनी परीक्षण उड़ान भरी। यह संसार का सबसे बड़ा जेट-विमान था। छः मिनट की इस उड़ान में इसने लगभग 400 मील प्रति घंटा की रफ्तार प्राप्त की। लेकिन जर्मनी के नाजी अधिकारी इससे प्रभावित नहीं हुए और निर्माताओं तथा उच्च सैनिक अधिकारियों की आपसी लाग-डांट की वजह से जर्मनी का पहला लड़ाकू जेट-विमान समय पर विकसित नहीं हो सका। इसके अलावा अभी तकनीशियन भी इस प्रकार के इंजन से घबराते थे और तापसह मिश्र धातुओं के निर्माण की दिशा में आवश्यक शोध कार्य सम्पन्न नहीं हो सका था। इसी प्रकार 1930 में अपना प्रयोग आरंभ करने वाला एक इतालवी जेट-विमान डिजाइनकार दुर्भाग्यवश अपने प्रयासों में असफल रहा। इस प्रकार कम-से-कम अपने समय तक विटल का इंजन ही इस प्रकार का पहला इंजन बना रहा। हालांकि 1944 में बना ग्लोस्टर जेट-चालित विमान काफी दिनों बाद युद्ध-क्षेत्र में अपनी भूमिका अदा कर सका।

विश्वयुद्ध की समाप्ति के कुछ वर्ष के भीतर ही जेट-इंजन का उपयोग सभी

देशों में उड्डयन के सैनिक और नागरिक सभी क्षेत्रों में होने लगा। वायुयानों की गति में भी बड़ी तेजी से वृद्धि हुई। 1947 में एक अमरीकी जेट-विमान 'बेल एक्स एस—1' ने 'ध्वनि अवरोध' यानी ध्वनि नाका तोड़ दिया जिसके बारे मे अनेक विशेषज्ञों तक का मत था कि यह अलंघ्य है। ध्वनि की गति भूतल के समीप हिमांक के तापमान में 760 मील प्रति घंटा होती है। यदि विमान के सामने कोई पिंड इस गति से काफी कम चलता है, तो हवा उसके मार्ग मे दबाव तरंगों के कारण 'सचेत' हो जाती है कि विमान आ रहा है और हवा, जो एक लचकीला पदार्थ है, तब दबाव में अपेक्षाकृत बहुत कम अंतर के साथ विमान के चारों ओर बहने लगती है, और इस प्रक्रिया मे उसकी सघनता में बहुत अधिक अंतर नहीं आने पाता है। परन्तु जब विमान की गति शब्द की गति के बराबर होने लगती है, तो उसके आगे बहने वाली सचेतक तरंगें उत्पन्न नहीं हो पाती और हवा विमान से संपीडित होने लगती है तथा उसकी सघनता मे अचानक परिवर्तन आ जाता है। इसके फलस्वरूप खिंचाव में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है और उत्थापक बल कम हो जाता है—विमान के शरीर पर एक स्थिर संपीडक तरंग या आघात तरंग बन जाती है।

फिर भी, ध्वनि अवरोध को तोड़ना न केवल संभव हुआ, बल्कि आशा से अधिक सरल भी सिद्ध हुआ। परन्तु ऐसा केवल उपयुक्त रूप से तैयार किए गए जेट-विमानों के साथ ही हो सका। यदि कोई प्रोपेलर से चलने वाला विमान इतनी गति प्राप्त कर ले तो वह इस प्रक्रिया मे नष्ट हो जाएगा। इसीलिए आजकल के तेज चलने वाले विमान जेट-चालित ही होते हैं। इनमे सबसे पहला जेट-विमान ब्रिटिश 'कॉमेट' 1950 में उड़ा था। लेकिन इसकी मौलिक किस्म को कुछ दुर्घटनाओं के कारण रद्द कर देना पड़ा, हालांकि दुर्घटनाओं का मूल कारण कभी-भी स्पष्ट नहीं हो सका। 1958 के बाद से ब्रिटिश, अमरीकी, फ्रांसीसी और रूसी जेट-विमानों ने लम्बी दूरी के अधिकांश वायु मार्गों पर पिस्टन-इंजन चालित विमानों की जगह ले ली।

प्रथम पराध्वनिक विमान 'कोन्कोर्ड' है। ब्रिटिश डिजाइन पर बने इस विमान के दो अग्रिम नमूने तैयार किए गए हैं जिनमें से एक ब्रिस्टल मे और दूसरा फ्रांस में तुलूस नामक स्थान मे बनाया गया है। इस आंग्ल अमरीकी परियोजना पर एक अरब पौंड का खर्च बैठा है। इस प्रकार यह वैमानिकी के इतिहास मे सबसे मंहगा विमान है। यह विमान 1400 मील प्रति घंटा की रफ्तार से, जो धरातल के स्तर की ध्वनि की गति की लगभग दुगुनी गति है, 136 यात्रियों को ले जा सकता है। इसका रेंज चार हजार मील तक है और एक बार उड़ने

पर यह लगभग तीन हजार मील तक जा सकता है, जो कि सिद्धांत रूप में दो घंटे की यात्रा के बराबर है। इस विशाल विमान की लम्बाई 184 फुट है और इसके पंख का फैलाव 84 फुट है।

कोन्कोर्ड मे चार इंजन होते हैं, जो दो चर्खी वाले टर्बोजेट होते हैं और जिनमें बहुस्तरीय सपीडक लगे होते हैं। अन्य अधिकांश आधुनिक जेट-विमानों में मोटर से ऊपर उपनिकास यानी, 'पंख-जेट' का प्रयोग होता है, जिसमे सामने की ओर से प्रवेश होने वाली वायु दहन-कक्ष की बगल से निकलकर जेट धाराओं में मिल जाती है, उन्हे ठण्डा करती है और इस तरह इसकी ठेल को बढ़ा देती है।

टर्बोफैन इंजन
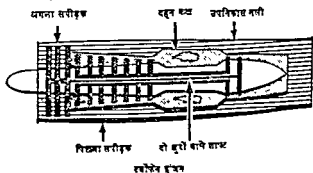
जेट-विमान की गति-सीमा क्या है? यद्यपि ध्वनि अवरोध को पार कर लिया गया है, लेकिन 'ऊष्मा-अवरोध' अब भी मौजूद है और इसी कारण किसी विमान की गति वातावरण में 'मैक—3' अर्थात लगभग दो हजार मील प्रति घंटा तक सीमित हो सकती है। इस रफ्तार पर किसी विमान के बाहर का तापमान, जो कि वायु के घर्षण से उत्पन्न होता है, लगभग 280 अंश सेंटीग्रेड हो जाता है। (पानी 100 अंश सेंटीग्रेड पर उबलता है) इससे अधिक तापमान को सहन करने के लिए इस्पात और टाइटेनियम के ढांचे बनाए जा सकते हैं और आशा है कि हम 1970 और 1980 के बीच में पहले मैक—3 विमान को लंदन और लास एंजल्स के बीच की दूरी साढ़े तीन घंटे में पूरी करते हुए देख सकेंगे।

परन्तु प्रोपेलर चालित विमान को चलाने के लिए भी जेट-इंजन का प्रयोग किया गया है। इसमें टरबाइन गैसों की संपूर्ण शक्ति को सामान्य प्रोपेलर से चलाने के लिए खींच लेते हैं और इस तरह विमान को 400-450 मील प्रति घंटा की रफ्तार प्रदान करती है। ऐसे विमान एक ओर मध्यम दूरी उड़ानों और विशेष रूप से माल ढोने के काम के लिए उपयुक्त और कम-खर्च सिद्ध होते हैं।

विमान को उड़ाने के अलावा ऐसे गैस-टरबाइन अन्य क्षेत्रों में एक नये मुख्य-चालक के रूप में कई प्रकार से उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हम पहले गैस-टरबाइन चालित मोटरकार और जहाज का उल्लेख कर चुके हैं। इसके अलावा ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका में इस प्रकार के इंजन से चलने वाली तेज रफ्तार की रेल गाड़ियों का भी विकास किया जा रहा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें हर प्रकार के ईंधन का उपयोग किया जा सकता है, जैसे बहुत हल्के किस्म का तेल (पैराफीन) और यहां तक कि कोयले की धूल भी। रेलों के डिब्बों को एल्यूमीनियम से बनाया जा सकता है ताकि शक्ति और भार का अनुपात अनुकूल रह सके। ऊर्जा के भूखे हमारे इस युग में यह एक स्थिर इंजन के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगा—पहला गैस-टरबाइन बिजलीघर डार्टमूर में 1959 में चालू हुआ था।

जेट-इंजन और रॉकेट के बीच में एक अन्य प्रकार का इंजन होता है, जिसे रैम-जेट कहा जाता है। इसे टर्बोजेट की भांति ही पिछले हिस्से में लगे जेट-पाइप से गैस की तीव्र धारा छोड़ने के जरिये प्रणोदन प्राप्त होता है। परन्तु इसकी बनावट अधिक सरल है, क्योंकि इसमें कोई संपीडक या अन्य कोई सचल पुर्जा नहीं होता। वास्तव में यह एक दहन-कक्ष मात्र होता है। इसीलिए लोगों ने इसका नाम उड़ने वाली चिमनी रख दिया है। वायु को दहन के लिए संपीडित करने के लिए रैम-जेट अपनी तीव्र अग्र गति पर निर्भर करता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह बिलकुल शून्य रफ्तार से आरम्भ नहीं कर सकता, तथा इसे उस रफ्तार (600 मील प्रति घंटा से अधिक, तक पहुंचाने के लिए जहां कि एकत्र वायु या संपीडन इसके लिए पर्याप्त हो सके, एक सहायक इंजन या सहायक विमान की आवश्यकता होती है।

इस खामी के अलावा इस पर काबू पाना भी बड़ा कठिन होता है, तथा इसका चालन उन आघात तरंगों से प्रभावित रहता है, जो इसके वायु-प्रवेश द्वार पर प्रायः नियमित हो जाती है। परन्तु साथ ही इसकी कुछ विशेषताएं भी हैं, जैसे इसमें कोई सचल या कमजोर पुर्जा नहीं होता, यह अत्यधिक ऊंचाइयों पर उड़ाया जा सकता है और विमानों में प्रयुक्त होने वाले अन्य किसी भी इंजन की अपेक्षा इसमें कम ईंधन की जरूरत होती है, जब कि इसके काम में उनकी तुलना में कोई खामी नहीं होती। कुछ इसी प्रकार के विमानों के लिए रैम-जेट का उपयोग बड़ा व्यावहारिक सिद्ध हो सकता है, और यह भी संभव है कि व्यापारिक उपयोग के लिए दो हजार मील प्रति घंटा वाले ऐसे रैम-जेट विमान तैयार किए जा सकेंगे, जो ऊपर उड़ने और ऊंचाई पर चढ़ने के लिए प्रचलित जेट का प्रयोग

करें और ऊंचाई पर पहुंचने के बाद रेम-जेट का प्रयोग चालू करेंगे। साठ हजार फुट की ऊंचाई पर रेम-जेट सामान्य टर्बोजेट की तुलना में इंजन-भार के प्रति पौंड तीन या चार गुना अधिक ठेल पैदा करता है। इस प्रकार इसी तरह के प्रणोदन इंजन का एक ही विमान में उपयोग का अतिरिक्त खर्च अपनी जगह पर गलत सिद्ध नहीं होता।

तकनीकी कल्पना की दृष्टि से ऊर्ध्वाधर यानी सीधी खड़ी उड़ान भरने वाले विमान का विचार पक्षी की आकृति के विमान की कल्पना के इतना ही पुराना है। हेलीकोप्टर खिलौने प्राचीन काल में चीनियों को ज्ञात थे। हेलीकोप्टर शब्द दो ग्रीक शब्दों 'हेलिक्स' और 'प्टेरोन' से बना है जिनका अर्थ क्रमशः

लियोनार्दो द्वारा बनाया गया हेलीकोप्टर का आरेख

कुंडलिनी या पेंच और पंख होता है। चीनी लट्टू नाम के एक खिलौने में एक-पेंचवाली डंडी पर छोटा-सा पंखा लगा होता है, जिसकी डोर खींचने पर पंखा घूमने लगता है और ऊपर हवा में उड़ जाता है। यह खिलौना 19वीं सदी में यूरोप के बच्चों में भी लोकप्रिय था। सन् 1500 के आस-पास लियोनार्दो दा विंची ने इसकी संभावनाओं पर विचार किया था और अपनी नोट बुकों में उन्होंने आर्कीमिडीज के पेंचों पर आधारित हेलीकोप्टर के चित्र बनाए थे। हो सकता है कि उन्होंने छोटे पैमाने के ऐसे नमूने भी बनाए हों। उन्होंने लिखा है, "अगर कुंडलिनी से युक्त इस यंत्र को अच्छी तरह से बनाया जाए और कुंडलिनी को खूब तेजी से घुमाया जाए तो पेंच हवा में ऊपर उठ सकते हैं और आगे बढ़ सकते हैं।" परन्तु लियोनार्दो के समय में ऐसी कोई मशीन नहीं थी, जो इस पेंच को घुमाने के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान करती। सर जार्ज केली ने भी 1800 के आसपास हेलीकोप्टर के कुछ प्रयोग किए थे। उन्होंने हाथ से चलने वाला एक [illegible] बनाया भी था, जो उनकी अपनी टिप्पणी के अनुसार "हवा में [illegible] की ऊंचाई तक उड़ा।"

19 वीं सदी के पूरे दौर में वैज्ञानिकों ने हेलीकोप्टर विमानों को बनाने के प्रयोग जारी रखे—दो फ्रांसीसियों ने हाथ से घूमने वाले हेलीकोप्टर बनाने का प्रयास किया। एक इतालवी आविष्कारक अपनी भाप से चलने वाली मशीन को हवा में 40 फुट ऊपर तक भेजने में सफल हुआ। एक अमरीकी हेलीकोप्टर को गृहयुद्ध के दिनों में बम-वर्षक के रूप में प्रयोग करने के बारे में सोचता रहा। इस तरह एक अन्य फ्रांसीसी ने अपने नमूने में एक बिजली की मोटर फिट की और एक जर्मन, एक आस्ट्रियन और यहां तक कि महान् आविष्कारक एडीसन भी बारूदी रुई के विस्फोटकों से हेलीकोप्टर को चालन-शक्ति प्रदान करने के बारे में प्रयोग करते रहे। 20वीं सदी के प्रारंभ में एक बर्लिनवासी आविष्कारक हरमान गैंसविट ने एक ऐसे हेलीकोप्टर का प्रदर्शन किया था, जिसे दो आदमी साइकल की तरह पैडल से चलाते थे। यह हेलीकोप्टर टेम्पलहोफ हवाई-अड्डे पर थोड़ा-सा ऊंचा उठा और फिर जमीन पर आ गिरा। 1907 में फ्रांसीसी आविष्कारक कोरनू ने लीले नामक स्थान पर एक मुसाफिर को साथ बैठाकर अपना हेलीकोप्टर हवा में पांच फुट ऊंचा उड़ाया और उसे एक मिनिट तक हवा में बनाए रखा। इस हेलीकोप्टर का 450 पौंड का पूरा ढांचा धातु के गर्डरों से बना था और इसमें 24 अश्वशक्ति की एक पेट्रोल मोटर दो रोटरों को चलाती थी। एक फ्रांसीसी इंजीनियर लुई ब्रेगे ने चार रोटरों वाला एक हेलीकोप्टर बनाया था, परन्तु इसके कार्य से वह संतुष्ट नहीं हो सका और उसने अपना ध्यान स्थिर पंखे वाले विमानों के निर्माण में लगा दिया।

दो साल बाद इगोर सिकोर्स्की ने, जब उनकी आयु 20 वर्ष से भी कम थी, अपने नगर कीव में पहला हेलीकोप्टर बनाया था। यह एक तरह का बड़ा-सा लकड़ी का डिब्बा था, जिसमें एक तरफ पेट्रोल-चालित इंजन था और दूसरी ओर चालक के बैठने की जगह थी। इसमें दो रोटर लगे थे, जिसमें प्रत्येक के दो पत्तियां थीं और इन्हें इस तरह लगाया गया था कि यह एक-दूसरे के ऊपर विपरीत दिशा में 15 फुट के व्यास में घूमती थी। परन्तु इस यंत्र की उत्थापन शक्ति केवल 350 पौंड ही हो सकी, जबकि इसका वजन 450 पौंड था। इसलिए युवा सिकोर्स्की ने निराश होकर कुछ महीने बाद दूसरा मॉडल तैयार किया। यह कुछ उड़ा, लेकिन बहुत अधिक नहीं।

तीस साल बाद जब कि सिकोर्स्की विमानों के एक सफल डिजाइनकार और निर्माता के रूप में अमरीका में प्रसिद्ध हो चुका था, तब फिर से उन्होंने हेलीकोप्टर के निर्माण में रुचि लेनी शुरू की। बीच के इन वर्षों में हेलीकोप्टर में सुधार करने के विभिन्न प्रयास विभिन्न देशों में किए जा चुके थे। अमरीका

हेलीकोप्टर के संबंध से 18वीं और 19वीं सदियों में की गयी कुछ कल्पनाएं
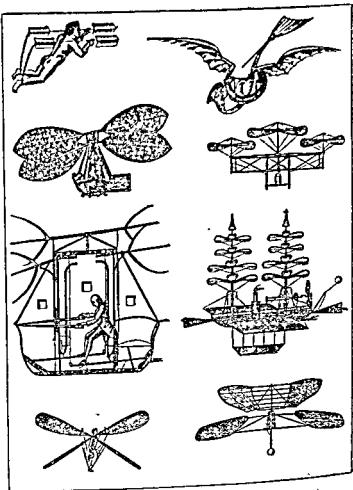
में बसे एक रूसी आविष्कारक जार्ज द बोथेजात ने अमरीकी सरकार से प्राप्त आर्थिक सहायता से 1921 में चार ब्लेडों वाले छः बड़े-बड़े रोटरों से युक्त एक यंत्र बनाया। परन्तु इस पर चालक की बजाय हवा का नियंत्रण अधिक काम करता था। इस समस्या को हल करने में एक उपयोगी योगदान जुआन द ला

सीरवा नामक एक युवा स्पेनवासी ने अपने 'आटो जाइरो' विमान बनाकर दिया। इसमें अग्रगति की उड़ान के लिए प्रचलित प्रोपेलर लगे हुए थे तथा हवा में इसे बनाए रखने की और इसकी गति को नियंत्रित रखने के लिए इसमें पखों की जगह रोटर लगा हुआ था, जिसे चलाने के लिए किसी शक्ति का इस्तेमाल नहीं किया जाता था। अंत में 1938 में फोक विमान कारखाने में एक जर्मन दल को ऐसे हेलीकोप्टर बनाने में सफलता प्राप्त हुई, जो वास्तव में हवा में उठ सकता था और उड़ सकता था। 150 अश्वशक्ति के इंजन से चालित यह विमान 11 हजार 500 फुट की ऊंचाई तक पहुंचा। इन्हीं लोगों का बनाया हुआ एक दूसरा माडल 'फोक-223' 1940 में 23 हजार 400 फुट की ऊंचाई तक पहुंचा। इसमें एक हजार अश्वशक्ति का इंजन लगा था, परन्तु युद्ध के कारण इन नमूनों की डिजाइन और इनके कार्य के बारे में 1945 तक किसी को भी जर्मनी के बाहर कुछ मालूम नहीं हो सका।

जब सिकोरस्की ने फिर से हेलीकोप्टर बनाने पर ध्यान देना शुरू किया तो डिजाइन बनाने के पहले ही उसके बारे में उनका विचार स्पष्ट था कि यह ऊर्ध्वाधर रूप से सीधी ऊपर उठने वाली मशीन ऐसा यन्त्र जो भार ढो सके और बहुउद्देशीय कार्यों के लिए उपयुक्त हो सके। इसमें न तो फिर पंख लगने थे और न ठेल के लिए कोई प्रोपेलर लगाए जाने थे। बल्कि केवल एक इंजन चालित रोटर की व्यवस्था होनी थी, जो मशीन को न केवल ऊपर उठा सके, बल्कि आगे को ले जा सके तथा उसे संतुलित रख सके और एक ही स्थान पर हवा में काफी देर तक बनाए रख सके। सिकोरस्की ने यही तय किया कि रोटर में तीन पत्तियां होनी चाहिए, जिनका 'पिच' या अंतराल को अनिश्चित हवा में काटना भी चालक द्वारा नियंत्रित किया जा सकेगा। एक सचल धुरा मशीन के झुकाव को नियंत्रित कर सकेगा। इसी तरह हेलीकोप्टर की ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज गतियां उसके पिच और झुकाव पर आधारित होंगी। इसके अलावा सहायक रोटर के रूप में मशीन की पूंछ के सिरे पर एक छोटा-सा ऊर्ध्वाधर प्रोपेलर भी होगा जो मुख्य रोटर के साथ ही पूरी मशीन के नाचने की प्रवृत्ति—'टोर्क' या ऐंठन को रोकने का काम करे।

इस प्रकार की उपयोगी मशीन के निर्माण का आकर्षण अन्य अनेक डिजाइन कारों की भांति सिकोरस्की के लिए भी बहुत अधिक था, क्योंकि यही एक मात्र ऐसा विमान हो सकता था जो हवा में कहीं भी ठहरा रह सकता था और जिसे चढ़ने और उतरने के लिए अधिक जगह की जरूरत नहीं होती थी—इसे किसी मकान की छत पर या पिछवाड़े आंगन में अथवा जंगल में भी [illegible] उतार

पर अथवा [illegible] हुई नदी या झील पर [illegible] बर्फ से ढकी सतह पर भी उतारा जा सकता था। सिकोर्स्की ने ऐसे हेलीकोप्टर का एक आर्मी का [illegible] सेना के लिए तैयार किया। इसका नाम रखा गया—[illegible]। कनेक्टिकट राज्य के ब्रिजपोर्ट में स्थित सिकोर्स्की के विमान कारखाने के हवाई अड्डे पर दिसम्बर 1941 को इस हेलीकोप्टर ने परीक्षण उड़ानें भरीं। परीक्षण पूर्ण सफल रहा। प्रदर्शन को देखने के लिए आए अफसरों के सामने कुछ आश्चर्यजनक करतब

जुआन द ला सीरवा का आटोगायरो
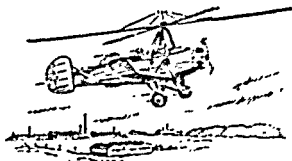
भी करके दिखलाए गए—हेलीकोप्टर के चालक ने 8 फुट ऊंचे एक डण्डे के सिरे पर हुए एक थैले के फन्दे को मकड़ी से उठा लिया। फिर उसने एक प त निश्चित जगह पर एक दर्जन अण्डों से भरा थैला धीरे से उतार दिया। उसने एक आदमी को ऊपर चढ़ाने के लिए रस्सी की सीढ़ी भी नीचे लटकायी और इन करतबों को समाप्त करने के बाद वह ठीक उसी जगह पर उतर आया जहां उड़ान के समय जमीन पर उसके पहियों से धब्बे बन गए थे इस दृश्य को देखकर एक दर्शक ने बाद में कहा "अगर मैंने यह सब अपनी आंख से न देखा होता तो मैं कहता कि यह असंभव है।"

उस दिन के बाद से हेलीकोप्टर ने असंख्य क्षेत्रों में विमान की उपयोगिता का विस्तार किया और सिकोर्स्की की इस भविष्यवाणी को सिद्ध किया कि यह मानवता के शांतिपूर्ण विकास में एक विश्वसनीय सेवक सिद्ध होगा। हेलीकोप्टरों ने समुद्र में जहाजों पर से बीमारों को उठाकर अस्पतालों में पहुंचाया है, बाढ़ में फंसे हुए लोगों को बचाया है और जंगलों में तेल के कुएं बैठाने के लिए डरिक और अन्य सामान पहुंचाया है। इसके अलावा इनसे फसलों पर कीटाणुनाशक औषधियों के छिड़काव में, भू-वैज्ञानिक अन्वेषण के नक्शे बनाने में और सर्वेक्षण

के काम में तथा अनेक प्रकार के दैनिक उपयोग के कार्यों में बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई है और हो रही है। इस प्रकार के अनेक कार्य ये मशीनें बड़ी तेजी से पूरी कार्यकुशलता से सम्पन्न कर सकती हैं।

परन्तु सामान्य यात्री-सेवा के क्षेत्र में हेलीकोप्टर ने उन अनेक परिवहन विशेषज्ञों की आशाओं को पूरा नहीं किया जिनका मत था कि वे हेलीकोप्टर के जरिये एक नगर से दूसरे नगर को जोड़ सकेंगे तथा शहर से हवाई अड्डे तक जाने और वहां से लौटने के उस सफर को भी आसानी से तय कर सकेंगे जिसमें मोटर से उससे कहीं अधिक समय लग जाता है जितना कि एक विमान को एक हवाई अड्डे से दूसरे हवाई अड्डे तक पहुंचने में लगता है। इस असफलता के कारण तकनीकी और साथ-साथ आर्थिक भी हैं।

हेलीकोप्टर क्षैतिज परिवहन के लिए एक उपयुक्त साधन नहीं है। यह अपने रोटर की सहायता से 150-200 मील प्रति घंटा से अधिक की रफ्तार से नहीं चल सकता, हालांकि रोटरों को उत्थापन के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम शक्ति की आवश्यकता होती है, फिर भी आगे की ओर उड़ाने की दृष्टि से यह खासा महंगा पड़ता है। एक रोटर वाला छोटा हेलीकोप्टर जिसमें आधे दर्जन से एक दर्जन तक यात्री बैठ सकते हैं और जिसका व्यापक रूप से सैनिक उपयोग हो रहा है, लोगों को थोड़ी दूर की यात्रा पर ले जाने की दृष्टि से बहुत महंगा साधन सिद्ध होता है। इसके अलावा इसमें आवाज भी बहुत ज्यादा होती है जब भी कभी नगर के एक भाग को दूसरे भाग से जोड़ने के लिए इनके उपयोग की बात चली तो नागरिकों ने इसी मुद्दे पर आपत्ति उठायी है कि इसके शोर का लोगों के कानों और स्नायुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। बड़े दो रोटरों वाले हेलीकोप्टरों का चलन कुछ सस्ता पड़ सकता है, लेकिन यह और भी ज्यादा आवाज करता है। फिर भी साइबेरिया जैसे मीलों दूर तक फैले हुए और खुले हुए स्थानों में हवाबाज के रूप में हेलीकोप्टरों का उपयोग महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। सोवियत संघ के पूर्वी क्षेत्रों और काले सागर के किनारे के अनेक वायुमार्गों पर हेलीकोप्टर सेवा चालू है। फिर भी अधिक घने बसे हुए देशों में इंजीनियर और डिजाइनकार ऐसे हेलीकोप्टरों का विकास करने में व्यस्त हैं, जो आबादी वाले क्षेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें और ज्यादा आवाज भी न करें। इस दृष्टि से तकनीकी रूप से तो उसी किस्म के हेलीकोप्टर अच्छे रहते हैं, जिनके रोटर मुख्य शाफ्ट के जरिये इंजन द्वारा चालित नहीं होते हैं, बल्कि जो रोटर में बनी दरारों से निकलने वाले छोटे जेटों के जरिये घूमते हैं। इससे इस यंत्र से अधिक शक्ति प्राप्त हो सकती है, लेकिन इसका शोर उतना ही ज्यादा हो जाता है। इस समस्या को हल करने के

अन्य रास्ते भी हो सकते हैं। कुछ जर्मन निर्माता कम्पनियों का एक समूह
आस्ट्रियाई इंजीनियर हांस डरश्मिट् द्वारा आविष्कृत एक नयी रोटर प्रण
को विकसित करने में लगा है। इन मशीनों में पंखों पर लगे दो रोटर होते
जिनकी पत्तियां झटके से खुलने वाले चाकुओं की तरह घूमती हैं। वे दोनों रो
दांतेदार पहियों की तरह अंतर्ग्रथित होते हैं। इस डिजाइन का उद्देश्य इस
रफ्तार को 310 मील प्रति घंटा तक बढ़ाना है। कब्जों पर जड़ी हुई होने के का
पत्तियां जब आगे बढ़ती हैं तो उनके सिरे की रफ्तार कम हो जाती है और पं
लौटने वाली पत्तियां बीच के रोटर की अपेक्षा अधिक रफ्तार से घूमती हैं क
इस तरह इनके सिरे की रफ्तार बढ़ जाती है। आशा है कि यह हेलीकोप
चौबीस यात्रियों को बैठा सकेगा।

इस प्रकार का हेलीकोप्टर अधिक तेज चल सकता है और कम खर्चीला
हो सकता है, लेकिन इसका शोर लगभग उतना ही रहेगा। शायद इसी कार
ब्रिटेन की एक कम्पनी फेयरे रोटोडाइन ने 1960 में आरंभ में ऐसे ही एक नमू
का प्रदर्शन करने के बाद इसका निर्माण स्थगित कर दिया। यह नमूना हेलीकोप्ट
और स्थिर पंख वाले विमान का मिला-जुला रूप था। इसमें ऊर्ध्वाधर उड़ान
लिए और उतरने के लिए एक बड़ा अग्र जेट चालित रोटर था और सीधी उड़ा
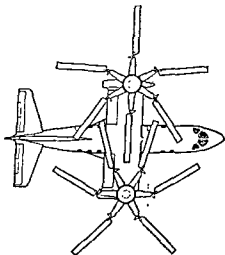
डरश्मिट् की हेलीकोप्टर डिजाइन

के लिए टर्बोप्रोप इंजन लगे थे। 1968 में इस प्रकार के विमान का एक आधुनिक रूप ब्रिटेन के हॉकर सिडले ग्रुप द्वारा प्रस्तावित किया गया। इस हेलीकोप्टर को नगर में ही यहां से वहां तक उड़ने और हवाई अड्डों तक यात्रियों को पहुंचाने और लाने के उद्देश्य से बनाया जाएगा। इसमें छोटे पंख होते हैं और बंद होने वाले रोटर होते हैं जिन्हें सीधी उड़ान के समय मोड़ा जा सकता है और उस समय टर्बोप्रोप इंजनों को चलाया जा सकता है। इसका रोटर भ्रमण नियंत्रित होता है अर्थात् उसकी पत्तियां बेलनाकार नलियों जैसी होती हैं जिनके अंतराल को बदलना जरूरी नहीं होना। इसके पिछले हिस्से के छेद से रोटर की पूरी लम्बाई तक एक दरार होती है जिसमें से वायु प्रवाहित होती है। जिसे नियंत्रित करके उत्थापन बल प्राप्त किया जा सकता है। बताया जाता है कि इस विधि से खिंचाव का बल कम होता है, लेकिन उत्थापन बल बढ़ जाता है और आवाज भी कम होती है।

विमानों की ऊर्ध्वाधर या सीधी उड़ान और उतार—'विटोल' (वर्टीकल टेक आफ एण्ड लैंडिंग) की समस्या वैमानिकी इंजीनियरिंग की एक मुख्य समस्या है। फ्रांस में 1950 के दशक के अंत में श्नेके ने एक जेट-चालित विमान का प्रदर्शन किया था जिसमें पंखों के ऊपर से हवा को बहने के माध्यम से लगभग सीधी उड़ान प्राप्त की थी। जब कि ब्रिटेन की रोल्स-रॉयस कम्पनी ने अपने प्रसिद्ध 'उड़ान-विस्तर' के साथ इस दिशा में प्रयोग किए हैं, जिसमें एक खासे बेढंगे इस्पात के ढांचे में ऊर्ध्वाधर जेट इंजन लगे हैं जो विमान को जमीन से सीधे ऊपर उठा लेते हैं। इस प्रणाली को थोड़ा रूपान्तरित करके बड़े जेट विमानों को उड़ाने और उतारने के एक सहायक माध्यम के रूप में प्रयोग में लगाया जा रहा है जिससे इन विशाल जेट विमानों को सामान्य से छोटा रन-वे की ही आवश्यकता होती है। अमरीका ने बहुत कम वजन के फाइबर-ग्लास से बने ऐसे प्रोपेलरों का प्रयोग किया है, जो गोल नालियों में लगे होते हैं और जिन्हें विमान के आगे और पीछे फिट किया जाता है। प्रोपेलर के पिच में परिवर्तन करके इस मशीन को ऊपर उठाया जा सकता है। ये नालियां चक्राकार फ्रेमों के रूप में प्रोपेलरों के चारों ओर लगी होती हैं। 1960 में रोल्स-रॉयस ने चार घूमने वाले जेट इंजनों से युक्त एक 'विटोल' मशीन का प्रदर्शन किया था। जमीन से सीधे उठने और उतरने के लिए यह जेट नीचे की ओर मुड़े रहते हैं और विमान को आगे ले जाने के लिए घूमकर सामने की ओर हो जाते हैं। फिर भी तेज आवाज की वजह से यह विमान नगरों में प्रयोग की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।

अमरीका ने एक 'उड़न कुर्सी' का भी आविष्कार किया है जिसमें चालक एक कुर्सी जैसे ढांचे पर अपने को आराम से बांधकर बैठता है। इसमें नीचे की ओर मुंह किए हुए जेट लगे होते हैं, जो इस ढांचे को पन्द्रह मिनट तक एक ही जगह पर हवा में उठाए रख सकते हैं, या उसे 12 मील दूर तक ले जा सकते हैं। परन्तु इसमें भी बेहद ईंधन खर्च हो जाता है। इस प्रकार निजी 'विटोल' मशीनों के कुछ और नमूने हैं, जैसे 'पोगो' नामक एक छोटे से तख्ते पर यात्री खड़ा रहता है या अपने सीने पर ऐसी पट्टी बांध लेता है जिसमें छोटे-छोटे जेट इंजन लगे होते हैं। इनमें से कुछ यन्त्रों में गैस टरबाइन जेट-जेट की बजाय रॉकेट लगे होते हैं। इनकी सहायता से कुछ साहसी उड़ाके वैज्ञानिक कार्य या शोध कार्य के लिए ऐसे इलाकों में पहुंच सकते हैं, जहां सामान्य साधनों के जरिये पहुंचना असम्भव होता है। इसी प्रकार के साधनों द्वारा चन्द्रमा के धरातल पर भी यात्रा की जा सकेगी। परन्तु आधुनिक परिवहन के साधनों के रूप में इनका उपयोग शायद ही कभी हो सके।

किन्तु हवा में उड़ान भरने का मनुष्य का अत्यन्त प्राचीन स्वप्न आज भी यदि हमें अपूर्ण प्रतीत होता है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मनुष्य आज भी पक्षी की तरह हवा में उड़ने का आनन्द नहीं ले पाता है। हमारे युग के विमान विमान, जिनमें यात्री उसी तरह आराम से कुर्सी में बैठे हुए यात्रा करते हैं जैसे वे अपने होटल के बरामदे में बैठे हों। इसमें हर चीज को इस प्रकार बनाया गया है कि यात्री को वास्तविक उड़ान का कम से कम अनुभव हो सके। केवल ग्लाइडर ऐसी चीज है जिसमें हम हवा में भार-हीनता की स्थिति में तैरने का कुछ अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

परन्तु इंजन-हीन ग्लाइडरों, जो कि एक खेल के रूप में भी कभी वास्तव में लोकप्रिय नहीं हो सके, केवल उन्हीं स्थानों में प्रयुक्त हो सकते हैं जिनका आकार-प्रकार एक विशेष ढंग का हो और जहां वायु धाराएं भी एक निश्चित प्रकार की उपलब्ध होती हों। इसके अलावा ग्लाइडरों को ऊपर उड़ाने के लिए किसी मोटर-कार के जरिये उसका खींचा जाना जरूरी होता है। हवा में ग्लाइडर के जरिये तैरने में बड़ा आनन्द आता है, लेकिन इसमें हम जब मन में आए नहीं उड़ सकते; क्योंकि यह बहुत कुछ हवा के रुख पर निर्भर करता है। यही कारण है कि यदा-कदा प्रायः ऐसे आविष्कर्ता सामने आते रहते हैं जो ग्लाइडरों को ऊंचा उठाने और उनकी उड़ान को नियंत्रित करने के लिए मांस-पेशियों की शक्ति का उपयोग करना चाहते हैं। पंख फड़फड़ाने वाला विमान इस प्रकार की एक विधि हो सकता है। इसी प्रकार एक उड़ान-साइकल बनायी गयी है

जिनमें उड़ाका अपने पैर की ताकत से प्रोपेलर को चलाता है। 1936 में जंकर विमान कारखाने के दो जर्मन इंजीनियरों ने ऐसे ही विमान में 20 सेकंड की उड़ान भरी थी।

1959 में ब्रिटिश उड्डयन मंत्रालय का एक वरिष्ठ अधिकारी कार्डिंगटन हवाई अड्डे पर अपनी ऐसी ही एक 'उडन साइकल' से उडा था। उन्हीं दिनों बेलफास्ट के क्वींस कालेज में वैमानिकी इंजीनियरिंग का एक प्रवक्ता भी इसी दिशा में प्रयोग कर रहा था। इनमें से पहले आविष्कर्ता का विचार था कि उसकी 90 पौंड वजन की मशीन केवल एक आदमी के प्रयास से हवा में उड सकेगी जबकि दूसरे आविष्कर्ता ने अपनी मशीन का ढांचा हल्का बनाया था और दो आदमियों के जरिये मशीन की पूछ में लगे प्रोपेलर को चलाने की कोशिश की थी। चूंकि शुरू में विशेष रूप से अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है इसलिए उसने खिलौना विमान की तरह कुछ लचकीले बंधनों को ऐंठकर शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया था। इसमें उडाकों को उड़ान आरम्भ करने के पहले ही पैडल चलाकर इन लचकीले बन्धनों को ऐंठना पडता था। इस प्रकार मानव-पेशी के प्रयोग की शर्त अपनी जगह पर कायम रही थी।

इस प्रकार हो सकता है कि ग्रीक लोक-कथा के नायक इकेरस के मार्ग पर चलकर हम भी हवा में उड़ने के अपने प्राचीन स्वप्न को पूरा कर सकें जिसे कि हवाई परिवहन के आधुनिक साधन पूरा करने में अब तक असफल रहे हैं।

परमाणु ऊर्जा ने नौ-चालन के क्षेत्र में बड़ी आशापूर्ण शुरुआत की, और सामान्य लोगों की दृष्टि से तो ऐसा लगता था कि विमान चालन के क्षेत्र में भी इसका उपयोग आरम्भ होने में बस कुछ ही दिनों की देर है। 1950 के आसपास अमरीका और रूस में नाभिकीय बमवर्षक बनाए और उड़ाए भी गए थे। अमरीका के बी-36 बमवर्षक में एक परमाणु भट्टी लगायी गयी थी जो गैर आबादी वाले इलाके पर विमान के काफी ऊंचाई पर पहुंचने के समय टर्बो-जेट इंजनों की जगह चालू हो जाया करती थी। परन्तु जब श्री कैनेडी ने 1961 में अमरीका के राष्ट्रपति का पद सम्भाला, तो उन्होंने नाभिकीय बमवर्षकों के निर्माण की योजना समाप्त कर देने का निश्चय किया। कुछ सप्ताह बाद एक अमरीकी वैमानिकी पत्रिका में इस आशय का एक अपुष्ट समाचार प्रकाशित हुआ कि रूसियों ने एक परमाणु चालित बमवर्षक का सफल परीक्षण किया है। उस समाचार में बताया गया था कि यह रूसी विमान इक्कीस दिनों तक बिना दोबारा ईंधन भरे बराबर उड़ता रहा। इसकी रफ्तार 2,500 मील प्रति घंटा थी जो बढ़कर अधिक-से-अधिक 3,500 मील प्रति घंटा हो सकती थी। परन्तु

हाल के तकनीकी मामलों में 'असम्भव' जैसा कोई शब्द नहीं है, फिर भी फिलहाल इतना कहा जा सकता है कि परमाणविक अवमान की बात को अव्यावहारिक ही माना जाना चाहिए।

परमाणु शक्ति अत्यधिक 'भारी' होती है और वहीं अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ प्रयुक्त हो सकती है, जहां उसका भार का प्रश्न गौण महत्त्व रखता हो, जैसे विद्युत उत्पादक संयंत्र अथवा समुद्री जहाज। जिस प्रकार भाप-इंजन वायु-परिवहन की दृष्टि से अव्यावहारिक सिद्ध हुए, उसी प्रकार परमाणु भट्टियां भी इस क्षेत्र में चालन शक्ति के स्रोत के रूप में उपयुक्त नहीं हैं। क्योंकि वायु परिवहन और कार्य-क्षमता का अर्थशास्त्र बहुत अधिक महत्त्व रखता है। इसमें इसके अलावा एक विशेष समस्या और होती है वह यह कि यात्रियों और कर्मचारियों को हानिकर विकिरण से बचाने के लिए भट्टी के आसपास इस्पात का या कंक्रीट का मोटा और भारी आवरण भी होता है, और इस अनुत्पादन भार को व्यर्थ ही विमान को ढोना पड़ता है।

एक अन्य बड़ी समस्या है कि यदि उड़ान के दौरान आकाश में ही परमाणु भट्टी चलते-चलते रुक जाए तो विमान को नष्ट होने से बचाना असंभव होगा। चार टरबाइनों या जेट इंजनों में से एक के बंद हो जाने पर भी विमान को हिफाजत के साथ जमीन पर उतारा जा सकता है। परन्तु नाभिकीय विमान में न तो अतिरिक्त परमाणु भट्टी ही हो सकती है और न किसी सहायक टर्बो-जेट या अन्य किसी शक्ति-उत्पादक इंजन की ही व्यवस्था की जा सकती है ताकि विमान को सुरक्षित उतारा जा सके। यदि ऐसी कोई व्यवस्था की गयी तो भार बहुत अधिक हो जाएगा। इसके अलावा अगर कोई नाभिकीय विमान दुर्घटनाग्रस्त होकर गिर पड़े तो उससे नष्ट-भ्रष्ट हुई परमाणु भट्टी से काफी बड़े इलाके में परमाणु विकिरण का खतरा पैदा हो जाएगा।

फिर भी हम अपनी इस शताब्दी में अनेक अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक वैज्ञानिक आविष्कारों को घटित होते हुए देख चुके हैं, इसलिए किसी दिन नाभिकीय विमान की समस्या का कोई हल भी प्रकट हो सकता है। हो सकता है कि यात्रियों को विकिरण से बचाने के योग्य आवरण के लिए कोई हल्का पदार्थ खोज निकाला जाए, या लोगों को यहां से वहां ले जाने के लिए कोई अन्य शक्ति साधन प्रकट हो जाए—उदाहरणार्थ जैसा कि हम नौवाहन के मामले में देख चुके हैं (देखें अध्याय 4) वायु परिवहन के लिए भी किसी 'दम' या कर्षण की व्यवस्था की जा सके।

वैसे व्यावसायिक और आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो वायु मे... उत्पादन

और विमान चालन की किसी नयी प्रणाली की हमें अब कोई विशेष खोज करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इस समय हमारे पास जो यन्त्र उपलब्ध हैं, उनमें कम से कम रॉकेट इंजन एक ऐसी वस्तु है जो हमारे दैनिक यातायात की किसी भी भावी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त गति उत्पन्न कर सकता है और काफी लम्बी दूरी को तय करने में पूर्ण सहायक हो सकता है।

पीछे हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि कुछ आविष्कर्ताओं ने उसी प्रकार की प्रतिक्रिया पर आधारित प्रणोदन से संबंधित प्रयोग किए थे, जैसा कि जेट और रॉकेट व इंजनों में होता है। परन्तु इनमें एक मुख्य अंतर है जिसे पहले एक रूसी वैज्ञानिक और अध्यापक सियोल्कोवस्की ने 1903 में स्पष्ट किया था, उन्होंने सुझाव दिया था कि पृथ्वी के वातावरण से बाहर जाने वाले यानों के लिए रॉकेट की व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि रॉकेट उन सभी रसायनों को अपने भीतर ही ढोता चलता है जो उसे अंतरिक्ष में आगे बढ़ाती हैं। उसे हवा से आक्सीजन प्राप्त करने की जरूरत नहीं होती।

1920-30 के आसपास जर्मनी इस क्षेत्र में काफी आगे बढ़ा हुआ था। हरमान ओबर्थ ने 1923 में अपनी पुस्तक 'रॉकेट और अंतर्ग्रहीय अंतरिक्ष' प्रकाशित करके इस क्षेत्र में अगुवाई की थी। कुछ साल बाद मोटर कार का उद्योग चलाने वाले फ्रिट्ज फान ओपेल ने बर्लिन के पास एक रॉकेट चालित कार का परीक्षण किया। ब्रुस्सविक के पास इसी प्रकार की एक रेल को भी पटरियों पर चलाकर देखा गया। रॉकेट के अन्य अगुवा मैक्स वैलियर ने एक कार बनाई जो 1929 में बवेरिया की एक जमी हुई झील पर 235 मील प्रति घंटा की रफ्तार से चली इसमें ईंधन के रूप में इथाइल अल्कोहल और तरल आक्सीजन का उपयोग किया गया था। इस प्रयोग में वैलियर की मृत्यु हो गयी, क्योंकि एक रॉकेट ट्यूब के फट जाने के कारण धातु का एक टुकड़ा उनके फेफड़े में आ घुसा।

हिटलर ने सभी प्रकार के असैनिक रॉकेटों पर रोक लगा दी और पीनेमुंडे का विशाल शोध केंद्र स्थापित किया गया। यहीं 'वी-1' और 'वी-2' नामक रॉकेटों का विकास किया गया था जो उड़न-बमों के रूप में ब्रिटेन के विरुद्ध गुप्त प्रतिशोध-अस्त्र की टोह लेने प्रयुक्त किए गए थे। इस केन्द्र के प्रधान थे डा० जनरल वाल्टर डोर्नबर्जर और डा० वर्नहर फान ब्राउन उनके मुख्य सहायक थे। इसी के लिए अधिकांश सैद्धान्तिक कार्य वियाना के वैज्ञानिक डा० यूजेन सांगर ने किया था।

पहला वी-2 जो समस्त आधुनिक रॉकेटों का पहला नमूना था, 3 अक्तूबर 1942 को बाल्टिकबर्ग के समीप तोपखाने के अभ्यास के एक पुराने रेंज में स्थित अपने परीक्षण स्थल से छूटा था। इसका भार एक टन के आयभार सहित कुल

27,500 पौंड था। इसके रॉकेट इंजनों ने 55,000 पौंड की ठेल पैदा की और रॉकेट को 60 मील की ऊंचाई और लगभग 650 मील से भी अधिक की दूरी पर पहुंचाया। वी-2 ने 15 मील की ऊंचाई पर लगभग 3,700 मील प्रति घंटा की तीव्रतम रफ्तार प्राप्त की थी। इसके प्रणोदक इंजन में अल्कोहल और तरल आक्सीजन सम्मिलित थे (बाद के वी-2 में नाइट्रिक एसिड तथा नाइट्रोजन, हाइड्रोजन के एक यौगिक हाइड्रोजन का ईंधन की तरह प्रयोग किया गया था) इसका नियंत्रण जाइरोस्कोपों और भूमि से भेजी जाने वाली एक रेडियो बीम के जरिये होता था।

इसी आरम्भिक चरण से अमरीका, रूस और ब्रिटेन में रॉकेट-विज्ञान के क्षेत्र में हुए अधिकांश युद्धोत्तर कालीन विकास को आधार प्राप्त हुआ। (अनेक जर्मन वैज्ञानिकों और तकनीशियनों को बाद में विजयी राष्ट्रों के लिए काम करने के लिए प्रेरित किया गया था) अनेक प्रकार के नियंत्रित शस्त्रास्त्रों और अन्तरिक्ष रॉकेटों का विकास किया जा चुका है, परन्तु आइए हम पहले हवाई परिवहन के लिए रॉकेटों के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

प्रणोदक पंखा या प्रोपेलर जेट और रॉकेट इंजन इन सभी की अपनी अपनी सीमाएं हैं जिनमें ये सर्वोत्तम कार्य कर सकते हैं, प्रोपेलर वातावरण की निचली परतों में ही सबसे अच्छी तरह से काम कर सकता है, जहां इसे काटने के लिए पर्याप्त मोटी वायु सुलभ होती है। जेट इंजन को जो कि इसमें कहीं तेज रफ्तार हासिल कर लेता है, विमान को आगे ठेलने के लिए वायु की आवश्यकता नहीं होती परन्तु यह हवा पीने वाली मशीन है—वास्तव में इसे और विशेष रूप से पश्च-जेट या उत्तरदाह किस्म के जेट को बहुत अधिक वायु की आवश्यकता होती है परन्तु वायु के साथ ही ऊष्मा अवरोध की समस्या भी लगी हुई है जो वास्तव में एक परिसीमा, या वायु की एक ऐसी परत होती है जो गतिमान विमान के साथ-साथ चलती है और आसपास की वायु से रगड़ खाती है, इससे घर्षण उत्पन्न होता है, और घर्षण से ऊष्मा पैदा होती है। इसलिए जहां घर्षण की अधिक रफ्तार का प्रश्न है, वहां विमान के निर्माण में विशेष ताप-सह वस्तुओं का जिनमें मूल्यवान निकल भी सम्मिलित है, उपयोग आवश्यक हो जाता है।

परन्तु यदि हम ऊष्मा अवरोध से बचना चाहें तो इसका केवल एक ही उपाय है—वातावरण से बिलकुल बाहर निकल जाना। यह रॉकेट इंजन से ही संभव है जिसे चलने के लिए हवा की जरूरत नहीं होती। हमें ज्ञात है कि रॉकेट [illegible] ठीक इसी प्रकार चलता है जैसे जेट विमान चलता है। बाहर निकलने वाली गैसों के निकलने वाली गरम गैसें उसको आगे की ओर धकेलती

निर्भर करती है। रॉकेट का विकास या 'एग्जास्ट' दो बातो पर निर्भर
है एक तो गैसें किस गति से बाहर ठेली जाती हैं (प्रति सेकड इतने पौंड
गैसें) और दूसरे इसके चलने की रफ्तार। इसलिए प्रश्न प्राथमिक महत्त्व
ता है कि किस प्रकार का ईंधन इस्तेमाल किया जाता है, इसके बाद निका
या नलियों की डिजाइन का प्रश्न आता है, क्योंकि इनकी बनावट ऐसी हो
ए कि गैसें अधिक से अधिक रफ्तार से बाहर आ सकें।
हाइड्रोजन और आक्सीजन के ईंधन मिश्रण का निकास वेग सबसे ज्या
ा है—13,000 फुट प्रति सेकड से भी ज्यादा, परन्तु अपने निम्न घनत्व
ण—दूसरे शब्दों में रॉकेट में ईंधन टैंको द्वारा घेरी जाने वाली जग
ण—यह रॉकेट विमान के लिए महगा पडता है। बोरोन और हाइड्रोज
िक पेंटाबोरेन का आक्सीजन के साथ सयोजन करने से इसका निका
ग 10,000 फुट प्रति सेकड होता है लेकिन इसका घनत्व कहीं ज्यादा
इससे भी ज्यादा घनत्व केरोसीन और आक्सीजन का होता है। लेकिन
निकास वेग इतना ही कम होता है। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण शर्त यह है
विभिन्न यौगिकों के जलन का तापमान कितना होता है अगर रॉकेट वि
जलने से बचाने के लिए प्रशीतन की विस्तृत व्यवस्था करना आवश्यक
इसका विमान के आयभार पर भी प्रभाव पड़ेगा और विमान चला
ज्यादा बैठेगा।

परन्तु सिद्धान्त रूप में इन समस्याओं को हल कर लिया गया है
तो यह केवल कुछ ही दिनों की बात है जब यहां लम्बी टूटों वाला प
विमान उड़ान भरेगा। इसकी अधिकतम रफ्तार जिस पर यह मनी
सकता है, 3,000 प्रति घण्टा से अधिक ही होगी। इसका सर्वाधिक
आकार पेंड्रुगी नामक समुद्री चिड़िया की तरह ही हो सकता है और
पीछे की ओर मुड़ सकेंगे जब यह वातावरण में उड़ान भरेगा तो इ
जाएंगे। एक अमरीकी प्रयोगात्मक रॉकेट विमान एक्स-15 ने 19
मील प्रति घंटा की चाल का रिकार्ड कायम किया था। इस का
पीछे की ठेल का था।

रॉकेट विमानों के 9,000 से 12,000 मील प्रति घटा तक के
कर लेने की बात की आशा की जा सकती है। इस रफ्तार से उड़
[illegible]

का समय नहीं लगेगा।

अंतरिक्ष का अन्वेषण अक्तूबर 1957 में आरम्भ हुआ जब रूसी रॉकेट के जरिये एक छोटा-सा मानव निर्मित उपग्रह 560 मील ऊपर अंतरिक्ष में पहुंचाया गया, जहां उसने 17,000 मील प्रति घंटा की रफ्तार से पृथ्वी की परिक्रमा करना शुरू किया। उसके बाद से अनेक रूसी और अमरीकी 'स्पुतनिक' (उपग्रह) पृथ्वी के वातावरण से बाहर भेजे जा चुके हैं। इन उपग्रहों में ऐसे स्वचालित उपकरण लगे हैं जो तापमान विकिरण चुम्बकत्व आदि संबंधी सूचना दर्ज करते हैं और उन्हें रेडियो द्वारा वापस पृथ्वी पर भेजते हैं. सितंबर 1959 में एक रूसी रॉकेट चन्द्रमा पर गिराया गया और एक मास बाद ही 'ल्यूनिक-3' नामक एक अन्य रूसी अंतरिक्ष यान ने चन्द्रमा की परिक्रमा की और उसने उस पक्ष के फोटो चित्रों को रेडियो के जरिये वापस पृथ्वी पर भेजा जिसे हमने कभी नहीं देखा था। 12 अप्रैल 1961 को साढ़े चार टन वजन का एक रूसी अंतरिक्ष यान एक रॉकेट द्वारा छोड़ा गया। यह अंतरिक्ष यान यूरी गागारिन नामक मानव को पृथ्वी की कक्षा में ले गया और वहां 18,000 मील प्रति घंटा की रफ्तार से इसने 89 मिनट
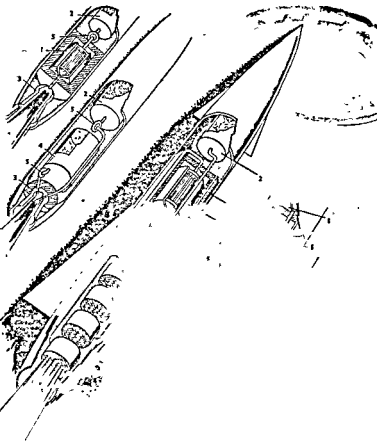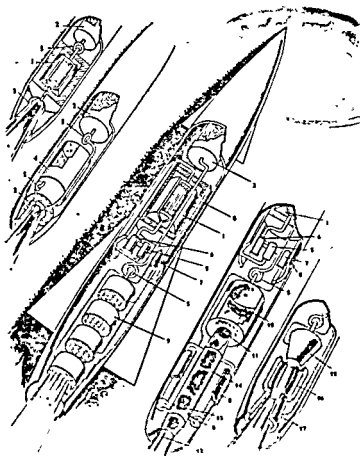
घंटा के वेग तक उसकी गति बढ़ाई जाती है। इस किस्म के रॉकेट में भी ऊष्मा और विद्युत् पैदा करने के लिए एक नाभिकीय भट्टी की जरूरत होती है।

संसार की दो महाशक्तियों अमरीका और रूस में ग्रहों के लिए होने वाली दौड़ जारी है, प्रतिष्ठा के नाम पर अन्तरिक्ष में एक ऐसी प्रतिद्वन्द्विता चल रही है, जो इसके लिए व्यय होने वाली अतुल धनराशि और श्रम की मात्रा को देखते हुए तथा अभी हमारे इस ग्रह पृथ्वी पर ही बकाया पड़े उन अनेक आवश्यक कार्यों को देखते हुए, जिनपर ध्यान देने और मेहनत करने की जरूरत है, भावी इतिहासकारों की नजर में सिर्फ एक लड़कपन सिद्ध हो सकती है।

द्रवस्थैतिक	Hydrostatic
धुरा	Axle
ध्वनि-अवरोध	Sound-barrier
नति त्रुटि	Heeling error
नाभि, हब	Hub
नाभिकीय रिएक्टर या भट्टी	Nuclear reactor
निकास	Exhaust
नेमि	Felloe
त्रिपाषाणी	Trilithon
पराध्वनिक	Ultrasonic
पार्श्विक स्थिरता	Lateral stability
पिच्छफलक	Vanes
पिच्छल	Stern
प्रज्वलन	Ignition
प्रणोदन	Propulsion
प्रतिवर्ती	Reversible
प्रत्यावर्ती धारा	ing current A. C.
प्रबलित कंक्रीट	ıforced Concrete
प्रशीतक	Refrigerator
प्रेरण	Induction
बाहुधरन	Cantilever
भगुर	Brittle
भिन्नक गीयर	Differential gear
मध्यपाषाण युग	Mesolithic age
रैम-जेट	Ram-jet
वायुगतिकी	Aerodynamics
वाष्पक	Vaporizer
वाष्पीभवन	Evaporation
विद्युत-विश्लेषण	Electrolysis
वैमानिकी	Aeronautics
संपीडक	Compressor
समकालिक	Synchronous